विडम्बना

लेखक

अविनाशचन्द्र बी. ए.

मिलने का पता
हिन्दी भवन, लाहौर

मूल्य २)

मुद्रक
देवचन्द्र विशारद
एच. बी. प्रेस,
लाहौर

प्रकाशक
श्री सुभाषचन्द्र
साहित्य मंदिर
७२-एफ मॉडलटॉऊन

भूमिका

अपने इन बच्चों को आज संसार क्षेत्र में पदार्पण करते देख मुझे हर्ष हो रहा है। साथ ही साथ एक खटका भी है। हर्ष इस बात का कि यह चलने लगे हैं और खटका इस बात का कि कहीं लड़खड़ा कर गिर ही न पड़े। पर मैं जानता हूँ कि इन्हें एक न एक दिन चलना तो है ही, इसीलिए तो इन्हें कोई सहारा भी नहीं दे रहा। अपने पाओं चलने लगें यही अचल समझता हूँ।

हाँ, यदि ये कहीं लड़खड़ा कर गिर पड़ें तो उठा दीजिएगा, झाड़पोंछ दीजिएगा; साथ ही साथ मुझे जता भी दीजिएगा नहीं कहीं मैं यह समझने लगूँ कि ये चलते ही भागने लग पड़े।

भूमिका की तर्ज पर मुझे इतना ही कहना है। हाँ बहन स्नेह और बन्धु डाक्टर कपूर से समय-समय पर ली गई सहायता के लिए आभारी हूँ।

७२-एफ़, मॉडलटॉऊन
जुलाई, १९४४.

अविनाशचन्द्र

प्रेमचंद बाबूजी की जितनी आस्थाओं
से मैं बहुत नीचे उतरा हूँ —

अभिमन्यु अनत

सूची

लेखक की अन्य रचनाएँ

(प्रेस में)

राह के काँटे (एकाँकी नाटक संग्रह)

मेरी पसंद (तीन अंक में नाटक)

विडम्बना

गुमाश्ताजी ने झुककर सलाम किया, ठिठुरते हुए और कुछ बड़प्पन दिखाते हुए बोले—सरकार, पानी पड़ने की वजह से देर हो गयी, पर आज तो उस बहादुरे को पकड़ ही लाया हूँ। सोचा, इस पानी में वह कहाँ जाएगा। फिर तनिक पास आकर बोले—आज क्या मजदूरी होगी! पर, उसे कैसे खींच लाया हूँ, यह मैं ही जानता हूँ, सरकार।

सरकार को चुप देख गुमाश्ताजी फिर बोलने लगे—इस मेंह-पानी में क्या मजदूरी होगी? फिर कमरे में जल रही अंगीठी के पास बैठते हुए कहने लगे—सावन-भादों में ऐसा पाला पड़ने लगा है, सरकार, ऐसी सरदी तो जाड़ों में पड़ा करती है। हरि ओम्! हरि ओम्!

सरकार कुछ नहीं बोले, कुछ देर वही मुद्रा धारण किये बैठे रहे। तिल्ले के काम किये हुए हुक्के की लम्बी नली का सिरा उनके मुँह में था, आँखों पर अर्ध-चन्द्राकार चश्मा लगा था, घुटनों तक ल्हासा का कम्बल, जो ऊपर से ठण्डा, पर गरमी पहुँचाने वाला होता है, ओढ़े हुए थे और कोई पुस्तक पढ़ने में तन्मय थे। वह बैठे पढ़ते रहे, उन्हें जैसे महसूस ही नहीं हुआ कि उनके कमरे में कोई आकर बैठा है, उनसे बातें कर रहा है और यदि हुआ भी, तो उन्होंने कोई परवा न की।

साढ़े दस बजने को आये थे, लेकिन सूरज का नामनिशान न था। पिछली सुबह से जो झड़ी लगी थी, वह रुकने में न आई थी और फिर धुंध, जिसके अन्दर घुसकर कपड़े सीले कर देने के डर से दरवाज़े और खिड़कियाँ बन्द कर दी गयी थीं, पर्दे गिरा दिये गये थे और बत्ती जला ली गयी थी, इतनी घनी थी कि बाहर कुछ सूझता ही न था। खुला दिन होता तो इस समय सरकार, हुजूर रानी साहिबा और उनके वह मित्र, जिनका रङ्ग गोरा था, नयन नक्श तीखे थे, शरीर थोड़ा भारी था, जिन पर ब्रीचिज़ खूब खिलती थीं, कबके घोड़ों पर चढ़े अपनी भूमि का निरीक्षण कर रहे होते या किसी मुजेरे के घर भूने हुए भुट्टे या उबले हुए अण्डे खा रहे होते और किसी-न-किसी मुजेरे को बेदखल करने की धमकी दे रहे होते। उनके साथ उनकी वह महिला-मित्र भी शायद होतीं, जो पहली बार पहाड़ पर आयी थीं, जिनकी तबीयत कुछ ठीक न थी और जिनकी खातिर उन्हें एकदम से रुक जाना पड़ता—मोड़दार सड़कें जो थीं और उनके बहुत पीछे रह जाने का भय था। पर, आज तो इस झड़ी के कारण निकलना नहीं हो सका। वह गोरे से मित्र अभी तक पड़े खर्राटे ले रहे थे, रानी साहिबा और उनकी वह महिला-मित्र ड्रेसिङ्ग गाउन और फरदार गरम जूते पहने रसोई-घरमें खड़ी अण्डों और जैमवाले टोस्ट बनवा रही थीं। उनकी महिला-मित्र को वैसे पकवानों का बहुत शौक था, एक बड़े कुक से उन्होंने खाना बनाना सीखा था—सतरंगे चावल, बताशों का रायता, मूँग की भूसी का साग, चने के आलू, यह सब बनाना वह जानती थीं।

सरकार की नींद प्रातः जल्दी खुल गयी थी, सुबह-सुबह ही नहाने का विचार आया, उठकर शेव किया, ठण्डे पानी से

नहा लिये, कपड़े बदल डाले और बैठकर डी० एच० लारेन्स का उपन्यास 'दी ट्रैसपासर' पढ़ने लगे। शायद वह सुबह-सुबह नहाये ही इसीलिए थे कि ट्रैसपासर का नायक सिगमाँड, जो छुट्टी मनाने, अपनी प्रेमिका के साथ समुद्र की ओर गया था, सुबह-सुबह ही समुद्र में नहाया करता था। वह भी तो अपनी प्रेमिका के साथ छुट्टी मनाने आये थे। जी में आया, उसे भी उठा लें और दोनों जने बेदिंग गाउन पहन सिगमाँड और हेलीना की तरह नहाने निकलें और दोपहर बीते घर लौटें। वहाँ कोई तामगा उनका अकेलापन भंग करनेवाला न हो, बस दो ही हों, अपने आपको एक दूसरे का अर्पण कर दें, एक दूसरे में रम जायें। खेतों में, पगडण्डियों पर, बावली में उछलते-कूदते फिरें, कौन जाड़े का मौसम है कि सरदी लग जायगी। हेलीना क्या सुन्दरी रही होगी, पर मेरी रानी पर बेदिंग ड्रेस जितनी खिलती है, उतनी तो शायद वीनस पर भी न खिलती। पर फिर विचार आया, उसकी कमर का जो वैसे ही, बिना किसी कारण दुखने लगती है। जोश में आकर वह बहुत कुछ कर जाती है, उस समय ध्यान नहीं देती—घोड़े पर कितनी देर चढ़ी रहती है, बावली के ठण्डे पानी में कितनी देर तक बैठी नहाती रहती है—बाद में पछताना पड़ता है। सो उसे नहीं उठाया, स्वयं नहा लिये और पुस्तक उठा मन-ही-मन उस स्नान का मजा लेने लगे, जो वह रानीजी को उठाकर करते। सिगमाँड में उन्होंने अपने आप को देखा, हेलीना में रानी को। सिगमाँड के शरीर का वर्णन पढ़कर वह अपनी छाती और बाहों के मसल टटोल कर देखते, अपना गर्दन देखने का कोशिश करते और हेलीना का वर्णन पढ़ने पर रानी की सुन्दर, नाजुक-लचकीली

देह उनके सामने नाचने लगती। कभी-कभी मन में, रानी की जगह उनकी वह महिला-मित्र ले लेतीं, पर फिर—और वह मन-ही-मन स्नान करते रहे। मूरख गुमाश्तेने ध्यान भंग किया, उन्होंने चाहा, उसकी कुछ परवा न करें, आनन्द लेने में तल्लीन रहें, पर गुमाश्ते के लकड़ियाँ छेड़ने और बीच-बीच में 'हरि ओम्, हरि ओम्' करने ने उन की विचार धारा तोड़ दी।

उन्होंने गुमाश्ताजी की ओर देखा, वह पहले से ही ऐनक के मोटे-मोटे शीशों में से उनकी ओर देख रहे थे, बोले—बहादुर को ले आया हूँ, मैंने सोचा, इस मेंह-पानी में साला कहाँ जायेगा, देर हो गयी है—बाहर बैठा है, हुजूर को बुलाना हो तो......।

सरकार ने किताब एक ओर रख कम्बल ठीक किया। गुमाश्ताजी अपने फटे हुए खाकी जीन के कोट के छेदों को बन्द करने की कोशिश करते हुए बोले—सरदी बहुत पड़ रही है, सरकार।

सरकार ने अंगड़ाई ली, एक जम्हाई लेकर बोले—ओह, साढ़े दस बज रहे हैं, अभी तक चा-वा कुछ नहीं मिली।

'चा-वा नहीं मिली ?'—गुमाश्ता जी तो धक से रह गये—क्या फिर झाड़ मिलेगी। दूध और अण्डों के लिए तो फीरोज़ और नत्थू से कल कह गये थे, अभी तक पहुँचे नहीं ! यह साले मुझे कितना परेशान करते हैं, रात तो कह रहे थे, न लालाजी, आप फिक्र न करें, सुबह-सुबह ही पहुँचा देंगे और अभी तक यहाँ कुछ आया ही नहीं। रानी ने मेरी तरफ आदमी तो नहीं भेजा। हे भगवान, यहीं न आ निकले, कहीं और दो-

चार खरी-खोटी न सुना दे—बदमिजाज छोकरी है, क्या-क्या कुछ कह देती है, फिर कैसे कपड़े पहने मेरे सामने आ जाती है, मैं जवाब क्या दूँगा, उसकी ओर तो देख तक नहीं सकता। उसने तो शर्म छोड़ दी है, मैं भी छोड़ दूँ? बोले—अभी तक सरकार ने चाय नहीं पी! ये बैरे इस वक्त तक क्या करते रहते हैं? सच कहूँ, ये सरकार, सिर चढ़ाने से बिगड़ जाते हैं—कहिये तो मैं खुद ही बावर्ची खाने में झाँकूँ?

'नहीं—हाँ, वह भी अभी तक यूँ ही पड़ा खुर्राटे ले रहा है, फिर जोर से आवाज़ दी, 'अरे मियाँ मोहन! कबतक पड़े सोते रहोगे? मैंने कहा, साढ़े दस हुआ चाहते हैं, उठो मियाँ।'

गुमाश्ताजी बोले—क्या है हुजूर, छुट्टी में यही तो मजा है, मैदान में तो सारा दिन काम-ही-काम रहता है, यहाँ जा, वहाँ जा, इससे मिल, उससे मिल, यहाँ जरा जी-भर सोने को वक्त मिला है। फिर शायद महसूस हुआ कि सरकार को प्लश के केम्बल में सरदी लग रही है, बोले—क्यों सरकार, सरदी बहुत पड़ में रही है?

सरकार चुप रहे, गुमाश्ताजी उनकी ओर देखते रहे, फिर बोले—बावर्चीखाने में झाँकूँ सरकार?

सरकार ने कहा—हाँ, देखिये तो।

गुमाश्ताजी उठकर चले गये। सरकार ने फिर पुस्तक खोली। सिगमौंड और हेलीना अब भी उनके दिमाग में नाच रहे थे। जिन्दगी तो उन लोगों की है, दो मित्र छुट्टी मनाने चल पड़ते हैं, यहाँ हम हैं, अपनी बीबी को, हाँ अपनी बीबी को सरेआम गले नहीं लगा सकते, उसका आलिङ्गन नहीं कर

सकते—वैसे खुले में ऐसा करना अच्छा तो नहीं, पर कभी-कभी जी कर हीं आता है, कई बार कोई अदा, नज़र ऐसी पसन्द आ ही जाती है कि गले लगाने को जीकर आता है, पर नहीं काबू करना पड़ता है।, एक वह हैं, जो जी में आया, किया। वैसे देखा जाय, तो जो जी में आये, कर देना चाहिये। जो बात मनमें की, बाहर की—दोनों बराबर है और फिर मन जो खराब होता है, वह अलग।

गुमाश्ता जी अन्दर आकर बोले—हुजूर, रानी जी और दूसरी बीबी जी खुद चाय तैयार कर रही हैं, बिल्कुल देवी हैं देवी! फिर उन्हें उन दोनों के जूते याद आ गये, जो वे रसोई घर में पहने थीं—राम-राम बिल्कुल क्रिस्तान हैं, मखमल के हैं तो क्या, हैं तो जूते ही और फिर तला तो चमड़े का ही है। छि-छि—फिर ऊंचे बोले—इतने नौकर-चाकर होते हुए भी खुद काम करती हैं।

सरकार जरा मुस्कराये, न जाने उन्हें क्या विचार आ गया था। उन लोगों के खाना पकाने पर हँसे थे, व्यङ्गात्मक हँसी या वह हँसी जो मियाँ बीबी को खातिर करते देख हँसा करता है।

'रानी साहिबाने कहा है, दस मिनट की देर है। कहें तो सरकार, बहादरे को बुलाऊँ, दस मिनट में निपटारा हो जायेगा। उसे कह दीजिये, मियाँ, दो दिन में पिछले दो सालों की पैदावार हाज़िर करो या बेदखल हो जाओ और सरकार, मुझे मुखतारनामा लिखकर दे जायें। मैं सब ठीक कर दूँगा। बुलाऊँ फिर उसे?'

'नहीं, अभी नहीं, चाय पी लें।'

'सरकार के दिमाग में हेलीना और सिगमॉंड खेल रहे थे। सरदी के कारण हेलीना ठिठुरने लगी, "सिगमॉंड ने उसे अपने साथ लगाया, ओवर कोट के बटन ऊपर से बंद कर लिए और एक पेड़ के नीचे पड़ रहा। अपने शरीर की गरमी उसे दी, उसके दिल की धक-धक को अपने दिल की धक-धक में मिल जाने दिया, उसके गालों पर अपने गाल रखे, उसके नीले नीले ओठों को चूम कर गरम और लाल किया......।" यह मेरी बीबी है, इसे भी रसोईमें जाने की क्या सूझी है? मैं यहाँ अकेला बैठा हूँ, इसे तनिक ध्यान नहीं और इस बूढ़े को अभी ही बहादुरेको लाना था।' उन्होंने किताब फिर उठा ली। साथ वाले कमरे से एक ट्रे बैरा, एक रानी जी और एक उनकी महिला-मित्र उठाकर लायीं और तिपाई पर रख दीं। रानीजी और उनकी मित्र सोफों में बैठ गयीं और बैरा ने प्लेटें मेजों पर लगा दीं।

रानीजी एक अण्डेवाला टोस्ट उठाते हुए बोलीं—देखूँ तो भला, कैसा बना है? तुम मियांजी, आज बड़े पढ़ाकू बने बैठे हो, उठो भी; और मोहन अभीतक नहीं उठा। जा लीला, उसे उठा ला।

उनकी मित्र—लीला, उठकर चली गयी।

सरकारने रानीजीके मुँह की ओर देखा, उनके बाल, जिनमें नकली पेच दिये हुए थे, बिखरे हुए थे, उनका मुँह कुछ फीका-फीका था, ओठ पीले-पीले थे, आँखें, जो काजल-की लीक से बहुत लम्बी लगा करती थीं, छोटी दिख रही थीं, गालों पर की सुर्खी पीली हो गयी थी—कल का किया हुआ मेकअप उतर

चुका था। सरकारने सोचा—हिन्दुस्तानी औरतें अंग्रेजों का मुकाबिला नहीं कर सकतीं।

नहा लिये ?—रानीजी ने पूछा।

'हाँ। जीमें आया था, तुम्हें भी उठा लूँ और दोनों मेंह-में नहायें, नंगे पैरों इन पहाड़ी पगडण्डियों पर चक्कर लगा आयें, पर सोचा, शायद तुम्हारी कमर में दर्द होने लगे तो—।'

'तो मियांजी बैठकर पढ़ने लगे !'

'क्या करता ?'

'मुझे जगा लिया होता।' फिर आवाज दी—मोहन, लीला ! अभीतक पड़ा है। चाय ठण्डी हुई जा रही है।

लीला और मोहन अन्दर आये। दोनों सोफे में बैठ गये। मोहन बोला—ओह, आज तो राइट रायल ब्रेकफास्ट है ! खूब।

सरकार ने कहा—अरे भई, मुँह तो धो लो।

मोहनने कहा—इस सरदी में मुँह धोलूं ! ऐसा बामन नहीं हूँ। थोड़ा पानी डालना जी प्याले में, एक कुल्ला किये लेते हैं और बनाओ जी लीला, हमारा प्याला—आज तो खूब मजेदार काम है।

सरकार बोले—लाला जी, आप रसोई में बैठकर चाय पीजिये, मैं बहादुर से—

लालाजीने कहा—बहुत खूब सरकार—जी बस, आज उसका फैसला कर ही दीजिये, मर्दूदने नाक में दम कर रखा है।

सरकार कहना चाहते थे, बहादुर का फैसला कल करूँगा, बेदखल ही तो करना है, आज न किया, कल कर लिया, पर चुप कर गये। लालाजी 'हरि ओम्-हरि ओम्' कहते उठ गये।

मोहन ने चायके पानी से कुल्ला किया और भूखे भेड़िये की तरह नाश्ते पर टूट पड़ा। रानीजी बोलीं—भई सबर से, बहुत कुछ धरा है, तुम्हारे लिए ही बना है, क्यों इतनी तेजी करते हो?

मोहन ने कहा—मुझे मालूम नहीं था कि जनाब का बैरा ऐसी बढ़िया चीजें बना सकता है।

लीला बोली—सरकार के बैरे ने नहीं, सरकारकी बैरी ने यह सब कुछ बनाया है।

अभी मैं कहूँ, उंगलियाँ नोंच खाने को जी चाहता है। क्या मिठास भर दी है। रानी जी, आज से आप ही खाना बनाया करेंगी। सरकार के लिए भले ही बैरा बनाये, हम तो बस आपके हाथ की बनी चीज खायेंगे। क्यों, सरकार?

बातें करते, हँसते-खेलते नाश्ता खत्म हुआ। बैरा को आवाज हुई, बर्तन उठा ले जाये। वह ट्रे में बर्तन उठा कर ले गया।

मोहन बोला—भई, बरसात चाहे कितनी ही हो, मौसम बड़ा लुभावना है। इस वक्त तो लीलाजी, अगर कोई गाना-वाना हो जाये तो—।

रानीजी बोलीं—हाँ लीला, हो जाये फिर कुछ।

लीला झिझकती नहीं है, बोली—हां मौसम तो बढ़िया है, कैसी चीज सुनोगे?

जो दिल बहला दे—मोहन बोला—कोई चुती-चुली चीज। गज़ल हो या गीत, ठुमरी हो या तराना, इससे मतलब नहीं।

'क्यों सरकार, क्या हो?'

'कुछ हो जाये।'

'पहाड़ में पहाड़ी का मजा आयेगा।'

'और फिर आज के-से दिन, जब—खैर पहाड़ी ही हो जाये।' मोहनने जोड़ा, लीलाने पहाड़ीकी धुन अलापी—खोल वे पांदिया पत्तरी, कदूं घर आवणा मैंडे ढोल। खोल वे पांदिया पत्तरी—

'बेचारी से सावन में रहा नहीं जाता।' मोहन बोला।

लीला रानीजी की ओर देखकर मुस्करा भर दी, एक रहस्यभरी मुस्कान और गाती रही—कदूं आवणा मैंडे ढोल और उसकी तान से मन्त्रमुग्ध हो तीनों बैठे सुनते रहे।

* * *

रसोई-घर में आकर गुमाश्ताजी ने खुलकर सांस ली। दो-एक गालियां मन-ही-मन सरकारको दीं, ऐसे सलूक किया करते हैं! 'लालाजी, आप रसोई-घर में जाकर चाय पी लें।' जैसे मैं इन कमीने बैरोंका, जिनका काम ही लोगों की जूठन उठाना है, साथी हूँ। लालाको यह ख्याल नहीं कि बच्चू खा ही मेरी बदौलत रहे हैं, मैं न रहूँ तो मुज़ेरे मुट्ठी भर अनाज न दें। घर बैठे बैठाये माल पहुँच जाता है, जभी कुछ महसूस नहीं होता। बच्चू को एक दिन हल जोतना पड़े, हल क्या, एक दिन सुबह से शाम तक भूखे, धूप-गरमी, मेंह-बरसातमें खेत में खड़े ही होना पड़े, होश आ जाये, चार दिन चारपाई से न उठे। हम लोगों के यहां पसीने निकलते हैं। उसे खुश रखने के लिए यहाँ इन बेचारे गरीब लोगों के साथ, जो कड़ी मेहनत करके पेटके लिए दो मुट्ठी अनाज पैदा करते हैं, लड़ाइयाँ लड़नी

पड़ती हैं, मार-कुटाई करनी पड़ती है, .जुल्म करना पड़ता है, जान जोखिम में डालनी पड़ती है और बस कह दिया, लालाजी आप रसोई-घर में—जैसे मैं उससे जात में कम हूँ, अक्ल में कम हूँ ! बस ये छोकरियाँ हैं और यह है, दिन-भर ऐश-आराम, नशा, खाना-पीना—हमारे गाढ़े पसीने की कमाई पर इतरा रहा है। सोफों से सजे, अंगीठी से गरम, ये कमरे, खाना-पहनना राग-रङ्ग, औरत, आखिर यह सब उसे मुयस्सर हैं तो हमारी ही बदौलत। हम आज काम करना छोड़ दें, बच्चू को खाने को न मिलेगा। और हम हैं, पहनने को कपड़ा नहीं, खाने को रोटी नहीं, बच्चे ठिठुरते हैं, बीबी दिन-भर काम करके चूर हो जाती है—बीबी क्या है मशीन, मर भी जायें तो किसी के कानों जूँ न रेंगे। इस बहादर ही को देखो, अभी उस दिन बीबी मरी है, अब जवान बेटा पड़ा है, वह दाने दे ही क्योंकर सकता है। पर नहीं, क्योंकि जमीन इनके बाबा के बाबा ने एक डूबती हुई मेमकी जान बचाने पर इनाम पायी थी, इसलिए इनकी है और वह इन्हें जरूर आधा दे, घास दे, दूध दे, अण्डे दे, शादी-ब्याह पर बकरा दे, अर्दल में हाजिर रहे, जी-हजूर, माई-बाप कहे ! वह दे ही कैसे सकता है—आधा अनाज, बकरा, अण्डे—सुबह-सुबह ही दर्जनों अण्डे उड़ रहे हैं, वह आखिर निकलेंगे कहाँ, ऐयाशी में ही तो ! बस में होता तो बहादर पर आँच तक न आने देता, पर करूँ तो क्या ? अगर हर साल किसी एक-आध को बेदखल न कराऊँ, तो सर हो जाता है, लाला जी, आप कुछ ढीले पड़ गये हैं—रोटी कहां से खाऊँ ?

बैरा ने पूछा—चाय पियोगे लाला जी ?

गुमाश्ताजी बोले—क्या कहा ? चाय ? अच्छा भई दे दो। सरदी कितनी पड़ रही है ! सावन-भादों में इतना जाड़ा कभी नहीं देखा, हरि ओम्, हरि ओम् ।

बैरा ने चाय का एक गिलास बना कर देते हुए कहा, लो लाला जी, दूध ज्यादा नहीं है, बीबी न जाने, आज क्या-क्या बनाती रही हैं, सब खत्म हो गया।

लाला जी ने कहा—हाँ, बीबियों को मुफ्त का जो मिलता है। और सरकार कहते हैं, रसोई में जा कर चाय पीलो ! यह चाय है या निरा-कोरा कहवा ! उन्होंने अपने हाथ में गिलास थामा और गरम पानी पीने लगे।

बहादुर बाहर बराण्डे में चारपाई पर बैठा न जाने क्या सोच रहा था। गहरी धुंध में जिस में से कुछ भी दिखाई न देता था उसकी आँखें गड़ी थीं और वह चील की नुकीली लकड़ी से दाँतों से मैल निकाल निकाल कर खा रहा था। शायद वह उस कमरे के अन्दर की गरमी, जिसे पत्थर की दो फीट मोटी दीवार रोके थी, अनुभव करने की कोशिश कर रहा था, या अपनी बीबी की याद कर रहा था, जिसे ऐसे दिन बहुत भले लगा करते थे, या अपने उस बीमार जवान बेटे के विषय में सोच रहा था, जो पिछले छः महीनों से रोग से चारपाई पर पड़ा था, जिसके गाल पिचक गए थे, आँखें पीली पड़ गयी थीं, पेट पीठ से आ लगा था और सांस लेते समय खर-खर होती थी। इतनी देर से वह अकेला बैठा कौन जाने क्या सोच रहा था।

'खोल वे पांदिया पत्तरी, कदूं घर आवणा मैडे ढोल—आवाज़ धीमी होती-होती बन्द हो गयी। लीला गाना खत्म करके

तनिक-सा मुस्काई, इस मुस्कान का अर्थ था, मैं समझती हूं, मैंने बहुत अच्छा गाया है, आपको खूब पसन्द होगा मेरा गाना, आप मेरी भूरि-भूरि प्रशंसा करें।

मोहन बोला—भई, बहुत खूब, फाइन! लेकिन लीला जी, एक बात है। यह गाना अगर आप लहँगा पहन कर, बालों में मेढियां डाल कर, कानों में चांदी की लम्बी-लम्बी बालियाँ और झुमके पहन कर, हाथ में एक टेढ़ी-मेढ़ी सूखी-सी कोई टहनी लेकर किसी पहाड़ी पगडण्डी पर एक-दो भैंसों, गायों के पीछे चलते वक्त गातीं, तो इसका मजा दूना होता। असल में यह चीज तो वैसी ही है, फिर भी बहुत ही खूब!

रानी जी ने एक ठण्डी सांस ली।

सरकार को मोहन के वर्णन में हेलीना दिखायी दी। वह बहुत चाहते थे कि उनकी जगह रानी ले ले, पर रानी जहां किसी तरह ठहरती ही न थी, उनकी आंखों में, उस तस्वीर, में जँचती ही न थी।

मोहन ने पूछा—और क्या सुनायेंगी?

रानी ने कहा—हां, लीला वह गीत सुनाओ 'कैसे कटे मेरी रतियां।' मोहन जी यह गीत इसका बेस्ट है।

लीला ने गाना शुरू कर दिया, मोहन अपनी कुर्सी के बाजू पर ताल देने लगा, लीला मन्द-मन्द मुस्काने लगी। 'कैसे कटें मेरी रतियां, सैयां कैसे कटें......

गाना समाप्त होते ही मोहन बोला, भई मुझे इजाजत मिले, मैं जरा बाथरूम से होलूं और इजाजत पाये बिना ही उठकर चला गया।

लीला ने कहा—हम भी तो—फिर रानी के मुँह की ओर इस दृष्टि से देखा, जिसका मतलब था, शीशे में जरा अपना मुँह तो देखो, ऐसे मुँह को कौन पसन्द करेगा—चलो उठो, जरा बन-संवर लें।

रानी और लीला उठकर चली गयीं। सरकार कुछ देर वैसे ही बैठे रहे, फिर हुक्के का कश खींचा। हुक्का ठण्डा हो चुका था, आवाज दी, बैरा-बैरा। बैरा अन्दर आया, बोला—हुजूर!

सरकार बोले—इसे ताज़ा कर दो।

बैरा चिलम उठा चला गया। सरकार ने पुस्तक उठायी और पढ़ने लगे। हेलीना और सिगमांड एक हो गए, पर हम—मैं और रानी—नहीं हो सके। आखिर कारण क्या है? शायद यही कि लीला और मोहन साथ हैं। पर अगर ये लोग न भी होते, तो भी हम एक दूसरे से थक जाते, सारा दिन अकेले—गुत्थमगुत्था—दो-चार दिन तो किसी के साथ रहा जा सकता है, पर सारी उम्र ऐसे काट देना मुश्किल है। यह बातें असल में नावलों की हैं, जीवन में ऐसे होता बहुत कम है। हां, काम से थक कर इन्सान अगर थोड़ी देर बातचीत रोजाना भी कर लें, तो कुछ बुरा शायद न भी लगे, पर ऐसे दिन-भर पड़े रहना और—

बैरा चिलम भरकर ले आया और हुक्के पर रख दी, सरकार ने कश लिया, धुआं छोड़ा, थोड़ा चैन आया। बैरा बोला।—हजूर, गुमाश्ता जी पूछते हैं, बहादर को ले आवें।

'हूँ...नहीं...अच्छा, उनसे कहो ले आवें।' सरकार ने कुछ सोचते हुए कहा—कमबख्त इतनी सर्दी में उसे उठा लाया है, आज न सही, कल हो जाता। असल में ये लोग एक दूसरे को देख नहीं सकते— चुगली में ही इनका जीवन है।

गुमाश्ता जी पहले स्वयं अन्दर आए, फिर आवाज़ दी—आजा, भई बहादर। बहादर ने अन्दर आकर, झुक कर सलाम किया और गुमाश्ता जी के बैठ जाने के पश्चात् पायदान-पर बैठ गया।

'सरकार, बहादर हाजिर है।'

सरकार ने पुस्तक पर से नजर उठाने का अभिनय किया, बोले—हाँ, बहादर, अच्छा कहो, तुम्हें क्या कहना है।

'बोल भई बहादर'—गुमाश्ता जी ने जोड़ा।

'मैं क्या कह सकता हूँ हुजूर, छः माह हुए, टबरी जाती रही, अब बेटा पड़ा है, सरकार।' बहादर की उन आँखों में, जिन में आंसू आने बन्द हो चुके थे, आंसू उतर आये। बहादर का सारा बयान बस यही था।

गुमाश्ता जी, सरकारी वकील की हैसियत में खड़े थे, बोले, हुजूर पिछले दो बरस से इसने एक दाना नहीं दिया। पार साल इसके बेशुमार आलू और मकई हुई, इसने दिखाई तक नहीं। घास का एक गड्डा नहीं दिया, अंडा इसने एक नहीं दिया, बेटी की शादी की, न बकरा दिया, न उसके पैसे। अबके इसने जमीन की खबर ही नहीं ली, घर जाओ तो मिलता नहीं, शहर की मजदूरी ही इसे बहुत पसन्द है। इसकी जमीन ऐसी अच्छी है कि कम से कम पचास मन दाने उतरते, इसे अगर

अपने पच्चीस मन नहीं चाहिए, तो हम अपने पच्चीस मन क्यों छोड़ें ! यह काम करना नहीं चाहता, इसी से दरखास्त है कि इसे जमीन से अलग कर दिया जाये। दूसरा जो आदमी आयेगा वह जमीन की खोज-खबर लेगा, हमें अपनी पूरी पैदावार मिलेगी। अपनी मजदूरी तो यह कमा ही लेता है, पर हमारी जमीन भी तो किसी काम आनी चाहिए। क्यों बे बहादर, मैंने कितनी बार तुम से कहा है कि काम कर, हल जोत, पर तू सुनता ही नहीं और सरकार, मैंने अपने पिछले तीन खतों में आपको इसके बारे में लिखा है।

सरकार ने कहा—देखो, भई बहादर, ऐसी बात ठीक नहीं, आखिर हमारी जमीन है, हमें भी तो कुछ मिलना चाहिये।

बहादर, जिसके बेटे की उम्र सरकार ऐसी थी, बोला—

हुजूर माई-बाप हैं—मैं आपका बच्चा हूँ। मेरा नूरू ठीक हो जाये, इंशा-अल्लाह पाई-पाई चुका दूंगा !

'देखा, सरकार, नूरू के चङ्गा होने पर। नूरू और दो साल पड़ा रहे, आखिर दिक है, तू हमें कुछ न देगा ! देख बहादर, तू सीधी तरह अपने आप अलग हो जा, न हमें तङ्ग कर न खुद हो। क्यों सरकार, ठीक ही तो कहा है मैंने।

सरकार बोले—तुम्हें कुछ-न-कुछ काम तो करना ही चाहिये।

'क्या काम करूं' सरकार, टबरी मर गई है, बेटी अपने घर चली गयी, और नूरू छः महीने से खाट पर पड़ा है, मैं कैसे काम करूं। गली में जाकर बैठता हूं, दो-चार आने पैदा करके

ले आता हूँ। चार पकाता हूँ, दो नूरू खा लेता है, दो मैं खा लेता हूं। मुझसे तो काम—नूरू, इंशा अल्लाह चङ्गा हो जाये, चलने-फिरने लायक हो जाये, मैं सब पाई-पाई चुका दूंगा—इस साल के पच्चीस मन दाने भी दे दूंगा। नूरू के ब्याह का और पहला चकरा भी दे दूंगा, पर—

सरकार सुन चुके थे, बोले—गुमाश्ता जी, जैसा आप मुनासिब समझें, करें।

गुमाश्ता जी बोले—मुनासिब क्या सरकार, मुख्तारनामा लिख दें, अब के न माना, तो दावा ठोक दूंगा। चल बे बहादरे, चलें।

'बस-सरकार, जाऊँ।' बहादर उठते हुए बोला।

'नहीं तो और बैठा रहेगा।' गुमाश्ता जी बोले और चलने लगे। बहादर भी चला। 'एक होने आया है, सरकार, जाऊं मैं भी।' लाला जी ने हाथ जोड़े, बहादरे ने हाथ माथे पर रख सलाम कर किया और दोनों बाहर हो गये।

मोहन हाथ में गिटार लिए अन्दर आया, बोला—क्या पढ़ रहे हो, पढ़ाकू महाशय? आज तो फिर हो जाये कुछ! क्यों? लीला और रानी कहां हैं, मैं बजाऊंगा, वे गायेंगी। फिर आवाज दी, लीला, रानी जी, और गिटार बजाने लगा।

लीला अन्दर प्रवेश कर, मुस्काते हुए बोली—भई बहुत खूब। फिर आवाज दी, अजी-ओ, महारानी जी।

रानी जी, जो अभी ठीक परी तो नहीं थीं, पर हां, गुजारे लायक, पहला कोट कर लिया था, अन्दर आयीं, बोलीं—खूब, तो लीला हो जाए न एक-आध।

और लीला ने तान छेड़ दी—आशा की दामिनि दमका देगी यह बदरिया कारी।

× × × ×

बहादर बाहर निकला, धुंधको देखा और उसके पांव जैसे अपने आप घर की पगडण्डी पर चल पड़े। ठकी पर पहुँचा तो मालूम हुआ, कोई दौड़ा आ रहा है। लड़के ने नजदीक आकर कहा—लाला-लाला, नूरू लाला को कुछ हो गया है, सरसे खून बह रहा है, आंखें खुली हैं, लाला जल्दी चलें।

बहादरे के पैर झट रुक गये, दिल ने धक किया और वह घर की ओर भागा।

कुत्ता अन्दर घुस आया था और प्याले में पड़े दूध को पीने लगा था। नूरू ने देखा। घर में कोई और तो था नहीं, उसे भगाने को उठा। न जाने क्यों चक्कर आ गया, गिर पड़ा। सिर पत्थर की कुर्सी से लगा, खून बहने लगा, बहता रहा, जम गया—

बहादर तेजी से धुंध को चीरता हुआ घर जा रहा था, नूरू धुंधको चीर कर घर जा पहुँचा था। लाला जी सोचते जा रहे थे उन्होंने पेट की खातिर बहादरे को बेदखल करवाया था, वरना उसके घरकी हालत ही ऐसी थी कि वह काम कर ही न सकता था। इतने बरस उसने हमें खिलाया है, दो एक बरस हम ही खिला देते उसे, तो क्या हर्ज था, पर सरकार कहां मानते थे। सरकार अपने विचार में खोये हेलीना को अपने बाहु-पाश में जकड़े थे और लीला गा रही थी, आशा की दामिनि दमका देगी, यही बदरिया कारी।

जून, १९४३

शराबी

उस दिन कल्लू जब घर को चला तो उसके पाँव पृथ्वी पर न पड़ते थे। मानो हवा में उड़ रहा हो। उड़कर उम्र के तय किये हुए कुछ सालों के रास्ते पर वापिस आ रहा हो, वहीं जहाँ से उसने अपना जीवन आरम्भ किया था।

हल्दी का सा रङ्ग लिये गहरी-पीली आँखें जैसे एक बार फिर चमक उठी थीं। चेहरे की लीकें भी भरती-सी लग रही थीं। मुँह में उसके एक बीड़ी थी और वह धुएँ के छल्ले हवा में उड़ाता आ रहा था। पहले भी कई बार उसने यह छल्ले बनाये थे, पर शायद वर्षों पहले। एक बार, क़रीब पन्द्रह वर्ष पहले जब वह इसी मिल में भर्ती हुआ था छः आने रोज़ पर, तब भी। पर तब बीड़ी न थी, था विलायती सिगरेट। जहाज़ मार्का, आजकल यह मार्के देखने में नहीं आते। पिचके हुए गालों को और भी पिचकाकर वह एक 'फू' के साथ धूआँ बाहर छोड़ता, छल्ले हवा में तैरने लगते और आखिर अपने जीवन का समय पूरा कर शून्य में लीन हो जाते। शून्य से चलकर वापिस शून्य में, जीवन का अन्त ही यही है!

टिफ़न की छुट्टी के समय से उसका यही हाल था। उसके बाद काम में उसका मन नहीं लगा। कब छुट्टी हो और कब घर पहुँचकर अपनी दुःख-सुख संगिनी को यह शुभ-समाचार सुनाये, यही चिन्ता उसे लग रही थी।

टिफ़न के समय वह बड़े दरवाज़े के पासवाले नल पर पानी पीने गया था। लोगों का कहना है कि वहाँ का पानी ठण्डा है। एक ही टैंक से सब पानी आता है पर फिर भी ऐसा विचार है कि कहीं पानी ठण्डा है कहीं गरम। अभी काम की घण्टी नहीं बजी थी इसीलिए वह गेट पर खड़े काबुली पठान से बातें करने खड़ा हो गया और बातों-बातों में ही पूछ बैठा 'क्यों खान! इधर कई दिन से मालिक दिखाई नहीं दिये, बात क्या है? नहीं रोज़ काम की आ पूछते थे यह ठीक नहीं हो रहा, वह ठीक नहीं हो रहा!'

'अरे फिर वही हाल होगा अब जो पहले था। दारू खुल गया है अब, सेठ को मिल से क्या? दारू नहीं था तो आता था काम को।'

इसी समय मैनेजर की कार आती दिखाई दी तो वह अन्दर चला गया। हाँ बात उसके मन में बैठ गई। सच ही तो है, साल भर पहले मालिक कभी इधर आते भी थे? कभी कहीं महीने में एक-आध बार इस पर भी मेम साथ में रहती थी। बस दो-चार को जुर्माना किया और चले गये।

काम पर जब बैठा तो उसका मन नहीं लग रहा था। इतनी मुद्दत के बाद जैसे वह सोचने लगा—अरे नशे बिना काम नहीं होता। अंग-अंग टूट रहा है। बार-बार उसका तागा टूट जाता

था और बार-बार जमादार आकर कहता था, 'क्यों बे कल्लू, आज तागा काहे को टूट रहा है ? होश से, सँभल के बैठ पन्द्रह बरस हुए काम करते ।'

उसके साथवाली मशीन पर छुट्टन काम करता है। जब कल्लू अपनी उत्सुकता रोक न सका तो उसी से पूछने लगा—'क्यों बे छुट्टन, सुना है दारू खुल गया है पर देवाजी का ठेका तो नहीं खुला अभी ?'

'अरे तो कौन देसी खुला है ! बिलायती ही तो। पीओगे बिलायती ?

'क्या बताऊँ छुट्टन ! दारु बिना सच कहूँ काम नहीं होता अब । अफ़ीम भी भला दारू का मुकाबला कर सकती है ! दारू, दारू ही है ।'

छुट्टन अपने काम में लगा था। परिवार ज्यादा होने के कारण वह दारू के विचार से ही दूर था। उसने अनमनी-सी 'हूँ' की ।

'मैंने कहा', कल्लू बोला 'बिलायती हम नहीं पी सकते ? काले हैं तो क्या ?'

'पी सकते हो तो पीओ, कौन रोकता है ? पर पाँच में आता है, पाँच पूरे में एक पवा ! समझे ?' छुट्टन ने खीझते हुए कहा ।

'सब समझता हूँ छुट्टन मियाँ, पर क्या करूँ ? अब तो पचास का भी हो तो भी एक बार पीके तो देखूँगा ही ।'

'आने आठ मिलते हैं, पचास का हो तो भी पीऊँगा ! पीओ' कहकर छुट्टन काम में लग गया ।

कल्लू सोचता रहा—पाँच ! दस दिन की मजदूरी। खैर,

कोई बात नहीं! याद तो रखूँगा कि विलायती पी थी एक दिन! सब लोग देखेंगे तो सही कि कल्लू पीता है। पियक्कड़ हो तो ऐसा। झनी को भी पिलाऊँगा। इतनी मुद्दत से उसे दारू नहीं मिला तभी तो निकम्मी हो गई है; यहाँ दर्द है, वहाँ दर्द है। रात भर खाँसती रहती है। याद तो रखेगी कि कल्लू के साथ पी थी एक दिन। फुर से दूर हो जाएगा उसका दर्द और फिर...

जब बीड़ी खत्म हो गई तो वह गाने लगा। एक पुराने गीत की टूटी-फूटी लड़ी जो कभी उसने गाई थी—एक बार जब उसने छुट्टन की बहू की मांसल बाँह पर हाथ रखा था कोई बाहर वर्ष पहले—तेरे नयन कटीले...

घर पहुँचा तो देखा झनी एक कोने में पड़ी थी। उसे शायद सर्दी लग रही थी, हूँ-हूँ कर रही थी। कल्लू ने सोचा कि नित्य की तो बात है। पैर से ठोकर मारते हुए बोला 'सुना री या पड़ी ही रहेगी। दारू खुल गया! फिर तगड़ी हो जायेगी। चल उठ जला चूल्हा।'

झनी सहसा उठ बैठी। 'क्या कहा? दारू खुल गया। ले आये हो पवा? रोटी नहीं बनी, सूखा ही ले आते दो आने का।'

'पवा-ववा कुछ नहीं। विलायती पिलाऊँगा तुम्हें, समझी?' और उसने उस अधेड़ स्त्री के गले में बाहें डाल दीं, 'समझी मेरी झनी रानी!'

'विलायती?' झनी ने विस्मय से पूछा।

'हाँ-हाँ विलायती खुला है। देसी नहीं। पर तुम्हें वही

पिलऊँगा, तू साब की मेम से कम है क्या ? तू कल्लू की मेम है। क्या समझी ? पैसे मिलने दे फिर तू देखियो कल्लू क्या करता है।'

दो दिन कल्लू के सपनों ही में बीते। काम में मन न लगता था। दिन में न जाने कितनी बार तागा टूट जाता और उसे बार-बार मशीन रोकनी पड़ती। कितनी ही बार जमादार उसे कह गया—कल्लू अब तुम छुट्टी क्यों नहीं करते ? बूढ़े हो गये हो, अब तुम से काम नहीं होता। कई बार छुट्टन ने कहा—कल्लू सो तो नहीं गये ? दीखे, अफ़ीम ज्यादा खा गये। वह सब कुछ चुपचाप सुनता रहा। उसके सपनों को कोई चोट न पहुँची। वह टूट न सके।

आखिर तीसरे दिन कल्लू जा पहुँचा फोर्ट में। उसने सोचा वहीं सस्ती मिलेगी और अच्छी भी। क्या बढ़िया-सा नाम था दुकान का, वहीं से लेगा। यहाँ कोई ऐसी-वैसी ही न पकड़ा कर लूट ले। विलायती, आखिर वह क्या जानता है। देसी होती तो वह बोतल देख कर ही पहचान लेता पर विलायती, किले में ही जाना होगा।

साढ़े सात रुपए खना-खन बज रहे थे उसकी जेब में क्या है पाँच ही तो लगेंगे ! अढ़ाई बहुत हैं पन्द्रह दिन को। नहीं बनिया से उधार ले लूँगा न देगा तो कहूँगा मिल से कटवा लेना। बस !

आखिर उसने एक दुकान देखी। शीशे के पीछे चमक रही थीं बोतलें। सैकड़ों थीं। भीड़ लग रही थी। मेम-साहब देसी-काले सभी थे। वह कैसे ले ? जाकर क्या कहे ? कोई निकाल

तो न देगा? 'लाल परी' लाल परी तो इन में होगी नहीं।' कल्लू दुकान के बाहर ही चक्कर लगाता रहा। कभी इस बोतल पर देखता कभी उस पर मानो नाम पढ़ लेगा और अन्दर जाकर कोई एक ले लेगा।

धीरे-धीरे करके रात के ग्यारह बजे के लगभग जब भीड़ छटी तो धड़कते दिल से उसने दुकान की सीढ़ी पर कदम रखा। रुपए सारे हाथ में थामें था। इस समय उसे साढ़े सात ही देने पड़ते तो वह साढ़े सात ही दे देता।

'लाओ' कहकर दुकानदार ने हाथ आगे बढ़ाया। उसने सोचा शायद किसी साहब ने रुक्का भेजा हो। आजकल ऐसे बहुत से शौकीन हैं जो रुक्का लिखकर ही मँगवा लेते हैं।

कल्लू ने उसके सामने रुपयों से भरी हथेली खोल दी।

'क्या है?' दुकानदार ने कुछ न समझ कहा।

'ए जी दारू।'

'दारू! कैसा दारू?'

कल्लू सकपका गया। माथे पर पसीने की बूँदें झलकने लगीं। वह काँपने लगा। क्या उत्तर दे।

'जी वही जो बीमार सर्दी...' आखिर कल्लू बोला!

'ओह! ब्रांडी चाहिए तुम्हें डाक्टर ने कहा है?'

'जी-जी। बांडी-बांडी। हम क्या जानें। बांडी ही होगी' सहज में बला टलते देख कल्लू ने कहा। चलो जो है सो ही ठीक!

दुकानार ने एक छोटा 'ऐकशन नम्बर वन' उसके आगे कर दिया और पौने चार रुपए उठा लिए।

कल्लू खुश था कि पाँच कहाँ पौने चार ही तो लगे। वह दुकान से निकला तो उसके पैरों में फिर से फुर्ती आ गई थी। भला अब कहे जमादार कि तुम बूढ़े हो। भला भला...

रास्ते से चार आने का सूखा 'मटन' भी उसने खरीद लिया।

उसके क्वार्टर में दिया जल रहा था, किवाड़ अभी खुले थे। झनी बैठी राह देख रही थी। कुछ देर तक छुट्टन की बीबी से बातें करती रही पर जब छुट्टन ने उसे बुला लिया तो वह देहलीज़ पर ही बैठ गई। कभी आसमान की ओर देखती, कभी सड़क पर। अब आता होगा। कहीं आप ही न पीने बैठ गया हो? मर्द होते ही ऐसे हैं, किसी की परवा ही नहीं करते। फिर सोचती—नहीं पर मेरा कल्लू ऐसा नहीं है? मुझे देख न ले तो जिए ही न! मिल की घंटी बजी। उसने गिने, बारह! हल्की सी एक तान सुनाई दी—तेरे नयन कटीले! पहचानी हुई आवाज़! कल्लू आ गया।

कल्लू जब पहुँचा तो बोतल उसके हाथ में थी। बड़े रोब-से पकड़े था जैसे मौन भाषा में कह रहा हो—देखे जिसे देखना है कि कल्लू असल शराबी है। तुम तो बस ग्यारह आने की लाल परी पी लेने पर समझते हो जैसे आस्मान उठा लिया। पीने वाले ऐसे होते हैं!

झनी उसे देखते ही उठ खड़ी हुई। एक अँगड़ाई के साथ मानो जवानी के दिन फिर रहे हों। कल्लू ने उसे कमर से लपेट लिया और उसके गालों पर गाल रखते हुए बोला 'तेरे नयन कटीले' उस में फिर से जवानी आ गई थी। झनी का दर्द भी काफ़ूर था।

फिर दिए के प्रकाश में किवाड़ बन्द करके वह बैठ गए, आमने-सामने। जाँघे पसार कर, छेड़-छाड़ करते। बीच में धरी बोतल और पतल में सूखा मटन।

'अरी झनी ठहर तू। पहले मैं देख लूँ स्वाद कैसा है।' कल्लू बड़प्पन दिखाता हुआ बोला।

'क्यों, कटोरी में तुम लो कुचड़ में मैं? मैं पहले लेता हूँ!' झनी मुँह बनाकर बोली।

'मानेगी नहीं तू? अच्छा ले' कल्लू ने थोड़ी ब्रांडी उसके कुचड़ में ढालते हुए कहा—'पानी मिला के पीना। तेज है, विलायती!' और कोई आधी बोतल अपने में ढाली। 'नहीं री मैं पानी नहीं डालता। तुम्हें कहता हूँ इसलिए तू मुझे कहती है! कल्लू नाम है मेरा' कहते हुए उसने कुचड़ को मुँह लगा दिया और ऊपर से एक हड्डी चबा ली।

'क्या समझी? मेरी मेम साब!'

पाँच मिनट की बात थी, बोतल खाली हो गई। दोनों पास-पास पड़ रहे। पसीना आने लगा, साँस वेग से चलने लगी। फुँफकार-सी सुनाई दी। आखिर अपना बाहुपाश ढीला करके कल्लू बोला 'किवाड़ खोल दे री गर्मी बहुत है।'

'आप ही खोल लो' खुमारी में झनी ने कहा!

'उफ़! गर्मी बहुत है' कहता हुआ कल्लू आखिर उठा और किवाड़ पर खड़ा हो कर गाने लगा—तेरे नयन कटीले...

झनी पड़ी फुँफकारती रही।

'अरी सुना कुछ, मैं नहाने जा रहा हूँ। गर्मी बहुत है, कह कर कल्लू अन्धकार में ओझल हो गया।

झनी रात भर पड़ी फुँफकारती रही। मुँह पर उसके पसीने के बिन्दु झलकने लगे। गालों पर वही रंग आ गया जिसे देख कर कल्लू दस साल पहले उसके पति के यहाँ से उसे उठा लाया था। और कल्लू, उसकी लाश प्रातः मिल के टैंक में तैरती मिली।

अगस्त, १९४७

लाल मोटर

लाल रंग पर कहते हैं दुनियाँ मरती है, गुलाब के लाल फूल पर, कामिनी के लाल-लाल ओठों पर, आँखों के लाल-लाल नशीले डोरों पर और इसी लिए वे सब लोग जो यह चाहते हैं कि उन्हें कोई चाहे, उन्हें देखे, उन से बातचीत करने का इच्छुक हो अपने निकट कोई न कोई लाल चीज़ रखते हैं। फीके फीके ओठों पर टेंजी के 'डार्क शेड' रगड़-रगड़ स्त्रियाँ उन्हें लाल कर लेती हैं, पीले-पीले गालों पर रुज घिसा-घिसा उन्हें जामनी-सा रंग देती हैं, सफ़ेद ब्लाउज़ के नीचे झड़कती हुई लाल अंगिया पहन लेती हैं; पुरुष लाल रेशमी रुमाल हाथ में ले लेते हैं, लाल रंग की टाई पहन लेते हैं, फेल्ट में लाल रंग में रंगा पर लगा लेते हैं—इसी ख्याल से ही लीला ने शायद लाल कार पसंद की थी। पति को कांडावाला के यहाँ ले गई, कार पसंद कर ली और उनसे चेक लिखवा लिया। उन्हें स्वयं एक दूसरी कार जो नारायणदास कम्पनी में खड़ी थी ज्यादा पसंद थी क्योंकि वह थोड़े पैट्रोल में ज्यादा मील चलती थी और उसके टूट जाने पर उसके 'स्पेयर पार्टस्' आसानी से मिल जाते थे

पर लीला की आँखों में कांडावाला के यहाँ खड़ी वह बड़ी लाल गाड़ी जो एक गेलन में सिर्फ आठ ही मील चलती थी, समा गई थी। उसकी, वह बड़ी गाड़ी पसंद करने के लिए, दलील यह थी कि बड़ी गाड़ी मोशन जल्दी पकड़ती है, बार-बार गेयर नहीं बदलना पड़ता, मिनटों में हवा से बातें करने लगती है, छोटी गाड़ी के गेयर बार बार बदलने पड़ते हैं, बाहर से कोई दो-चार मेहमान आ आएँ उन्हें बैठाया नहीं जा सकता, पहाड़ी पर नहीं चढ़ सकती और उसका विचार इस साल काश्मीर अपनी ही मोटर में जाने का था क्योंकि मिसेज रूसी, जो उसके साथ पढ़ती रही हैं, अपनी ही गाड़ी में जाया करती हैं। यह दलीलें उसने कांडावाला के यहाँ खड़े सेल्ज़मैन से सुनी थीं और तोते की तरह दोहरा देती।

वह लाल कार जिधर से निकल जाती लोगों की आँखें खींच लेती—उसी तरह जैसे सुनते हैं विलेन मिस्टर याकूब की लाल गाड़ी बम्बई में पारसी छोकरियों की आँखें बरबस खींच लेती है। लोग गाड़ी को भी देखते और गाड़ी में बैठी लीला को भी। उसके गोल-गोल, सफेद चेहरे को जिस पर काले रंग की धूप की ऐनक गरमी-सरदी इसलिए लगी रहती थी कि वह उसके सफेद रंग पर बहुत खिलती थी, उसके चुनर दिए हुए आँचल को जो साँप की तरह उसके गले में लिपटा होता, और उसकी भरी उभरती जवानी को जो फूट पड़ना चाहते हुए भी न फूटती। कार में बैठी वह यही सोचा करती कि लोग उसे देख रहे हैं या नहीं और जब कभी कोई मंचला ज़रा ऊँचे से आवाज़ कस देता तो उसे एक हार्दिक सांत्वना मिलती। लोगों

ने उसे देखा है, पसंद किया है और अपनी किस्मत को कोसा है—यह विचार उसे हवा में पहुँचा देता। पर वह नकली हकारत से नाक चढ़ा लेती, भवें सिकोड़ लेती और ड्राइवर से ज़रा तेज़ चलने को कहती—भला अनारकली में भी गाड़ी तेज़ चल सकती है! यूँही कह दिया करती थी वह।

उस दिन पड़ोसिन यूँही 'कर्टसी विज़िट' पर आई थी, पोर्च में खड़ी गाड़ी की ओर देख कर बोली, 'कहिए नई गाड़ी खरीदी है, बहुत अच्छी है, मुबारिक हो।

'हाँ' मिस्टर नन्दा का ख्याल है पोजीशन रखने के लिए गाड़ी हर साल बदल लेनी चाहिए। गाड़ी अच्छी है पर रंग ज़रा भड़कीला है इसी से मुझे खास पसंद नहीं—जहाँ जाओ लोग देखने लगते हैं। पर करें तो क्या, दूसरी, अच्छी गाड़ी मिल भी तो नहीं रही आजकल।' लीला ने कहा।'

नई कार खरीदने की इच्छा असल में मिस्टर नन्दा की इतनी नहीं थी जितनी लीला की। उनके पास एक कार थी जो अच्छी सर्विस दे रही थी पर लीला को, नई-नई शादी के बाद नए-नए भड़कीले कपड़े पहने, इस पुरानी गाड़ी—जिसका रंग जगह जगह से उड़ गया था और काला लोहा दिखने लगा था—पर चढ़ने में कुछ मज़ा न आता था। शादी की खुशी में ही मिस्टर नन्दा से यह कार खरीदवाई थी।

'तो क्या हुआ। कितने में आई है?' पड़ोसिन ने पूछा।

'कहने को तो बारह हज़ार कहता था पर कांडावाला के साथ हमारा आना जाना है इसलिए कुछ सस्ती हो गई है। चलिए न एक दिन आप को कहीं ड्राईव पर ले चलूँ पर मुश्किल

तो यह है कि पैट्रोल अगर मिल भी जाए तो भी वक्त बिल्कुल नहीं मिलता' लीला ने उत्तर दिया।

इसी समय रन्निया, जिसे वह किसी के सामने 'बेयरर' या 'ब्वाय' पुकारा करती थी, सामने से गुजरा और अंतिम वाक्य उसके कानों में भी पड़ गया। सोचने लगा, वक्त नहीं मिलता। दस बजे सुबह उठती है और बिस्तर में ही चाय फिर बारह बजे तक इधर उधर बैठी रहती है, खाने के बाद घंटा-डेढ़ सो लेती है, शाम को बन-सँवर कर घूम आती है रात को दो एक पेग जिन्हें वह दवाई के तौर पर इस्तेमाल करती है, लेकर सो जाती है—अगर यही काम है, इसी से वक्त नहीं मिलता तो उसका जीवन तो पहाड़ है! सुबह पाँच बजे उठकर बर्त्तन मलने, पानी गरम करना, चाय बनानी, बाज़ार जाना, गालियाँ खानी और इसी तरह रात के बारह बजा देने और फिर यदि कोई पूछे तो हँस कर कह देना, काम मामूली है, मेम साहब बड़ी अच्छी हैं। तो उसका काम—'बोआए!'

इसी बीच में लीला की आवाज आ पड़ी 'बोआए!' और वह 'हजूर' कह कर, कंधे पर का झाड़न सम्हाल कर हाज़िर हो गया।

'कहिए चाय पिएँगी या कोई कोल्ड ड्रिंक, दोनो चीजें तैयार हैं?' लीला ने पड़ोसिन से पूछा। पड़ोसिन ने कहा 'नहीं अभी चाय पी कर ही आई हूँ।'

'तो फिर कोल्ड ड्रिंक ही ले लीजिए। दो बिसटो लाओ' उसने 'बोआए' से कहा।

'बोआए' चला गया। हैरान था कि मालिकन की उस

पड़ोसिन से कोई दुश्मनी तो नहीं थी क्योंकि वह गाँव के स्थानों से तो यही सुनता आया था कि गरम-सर्द इकट्ठे नहीं इस्तेमाल करना चाहिए। पर गाँव के लोग अनपढ़ हैं, शहर के लोगों ने अंग्रेजी पढ़ी है, भला वह क्योंकर गल्त कह सकते हैं।

पड़ोसिन ने कहा, 'यह भी मुद्दत से गाड़ी बदलने को कह रहे हैं, पर मुझे तो यही पुरानी पसंद है। घर का एक मेम्बर-सी बन गई है और फिर आजकल के इस महँगाई ज़माने में तो—

लीला ने बात काटी, 'अजी सस्ती महंगी की इतनी नहीं, बात तो पसंद की है। मुझे इनकी पहली गाड़ी बिलकुल भी पसंद न थी। यह कार भड़कीले रंग की होते हुए भी प्यारी है। देखिए न, मैं दिखाती हूँ आपको—यह खाना है घड़ी के लिए—घड़ी मुरम्मत के लिए गई है, बहुत खूबसूरत घड़ी है, यह रुमाल वगैरा के लिए। यह हार्न, हार्न बहुत अच्छा है' उसने हार्न दबाते हुए कहा।

'पि-पि-पाँ-पाँ...पिपि पाँ पाँ' कल भी उसने अपनी सह-पाठिनी को डराने के लिए हास्पीटल के पास जहाँ वह बोर्ड लटक रहा है जिसके एक तरफ़ तो लिखा है, 'खामोशी हस्पताल है' और दूसरी तरफ 'शुक्रिया' इससे भी ज्यादा जोर से बजाया था और वह सह-पाठिनी जो अब एक कल्र्क से ब्याही गई थी और उस समय अपनी ठिगनी और भद्दी सास से चार कदम आगे चल रही थी, डर गई थी। इस 'पिपि-पाँ-

पाँ पि-पि पाँ-पाँ वाले हार्न पर जो हास्पीटल में पड़े हुए रोगियों और राह चलते लोगों को डरा देता उसे बड़ा नाज़ था।

'यह छत में बत्ती है, यह स्विच है, जी हो तो जलाओ न हो तो बुझादो' लीला ने अपनी बात जारी रखते हुए कहा। जब वह मिस्टर नन्दा के साथ पिछली सीट पर बैठती और ड्राइवर कार चलाता तो यह बत्ती बुझी रहती और जब मिस्टर नन्दा कार चलाते और वह उनकी बगल में बैठती हैं यह बत्ती जलती रहा करती थी।

'यहाँ रेडियो है, वह एरियल है' इसने मडगार्ड के साथ लगी लोहे का चमचमाती नुकीली-सी नाली की ओर संकेत करते हुए कहा, 'देखूं इस वक्त कोई प्रोग्राम है तो—हाँ होगा' और उसने रेडियो का स्विच आन किया। मिस चुनमुन बाई जिसकी लड़की मिस फ़ानूस जान शक्ल सूरत खास अच्छी न होने के कारण सिनेमा में एक्सट्रा का पार्ट करती थी, गा रही थी—'मेरी बाली उमरिया पे खाइयो तरस!' 'बड़ा मजा रहता है। चुनी हुई चीजे इंसान चाहे कहीं भी हो सुन सकता है।'

पड़ोसिन ने कहा—साईंस ने कमाल ही हासिल कर लिया है। देखिए न लड़ाई का क्या कुछ सामान बन रहा है, इतनी आफ़त ढाई जा रही है, सब साईंस ही की तो करामातें हैं। आज के अखबार में लिखा है कि जर्मनों ने कोई ऐसी चीज बनाई है जो बिजली के जरिए एक सेकिंड में मनुष्य को जला देती है।'

'च...च...च...' लीला ने किया और कहा—'आज कुछ मिलने वाले आ गए थे इसी से मैं पेपर देख नहीं सकी, अब रात को देखना पड़ेगा। करूँ क्या जब तक पेपर न देख लूँ नींद

ही नहीं आती।' और वैसे यह बात सोलह आने गलत है। रात को अव्वल तो उसे पढ़ने का समय ही नहीं मिलता और अगर किसी बदनसीब दिन मिल भी जाए तो वह 'हेल्थ एण्ड एफ़ीशेंसी' या 'ट्रू रोमाँस' ही पढ़ा करती है। और दैनिक पत्र, उसे शायद यह भी ख्याल नहीं कि उनके यहाँ 'सिविल' आता है या 'ट्रिब्यून'। चुनमुन बाई का गाना समाप्त हो गया और शाम को ख़बरों की घोषणा हुई। लीला ने रेडियो बंद कर दिया।

पड़ोसिन ने कहा—चलने दीजिए।

लीला बोली—'कुछ नहीं, खबरें हैं।'

× × × ×

ऐसा एक ख्याल है कि पुरुष की शान इस बात में है कि ड्राइवर कार चलाए और वह स्वयं पिछली सीट पर बैठे और स्त्री की इस बात में कि वह स्वयं सफ़ेद दस्ताने और काली एनक पहन कर कार चलाए और ड्राइवर पिछली सीट पर बैठे उसी तरह जैसे फ़िटन के पीछे साइस बैठते हैं। सो कार सीखना लीला ने जरूरी समझा और इसके लिए गुरु बनाया नन्दा साहब को। दोपहर को समय निश्चित हुआ, जब वे खाना खाने आएँ थोड़ा 'सबक' दे जाएँ। नन्दा साहब को यह सूट नहीं करता, एक तो उस समय काम रहता है और दूसरे रोटी, के बाद खुमारी भी आ जाती है जो मोटर चलाने में बाधक है। उनकी सलाह थी कि प्रातः आठेक बजे तैयार होकर चला जाए और नौ बजे तक लौट आएँ परन्तु लीला को यह पसंद नहीं—इसके लिए उस समय उठना मुश्किल है, उस

की कमर और टांगों में दर्द रहता है। अगर उठ भी जाए तो भी उस समय तैयार नहीं हो सकती क्योंकि 'रफ़-कोट' के लिए भी कम से कम एक घंटा तो चाहिए ही। सो यही दोपहर का समय निश्चित हुआ। नन्दा साहब नहर की तरफ उसे कार सिखाने ले जाने लगे, पहले दो दिन बग़ल में बिठा कर स्टीयर घुमाने की प्रेकटिस करवाई और फिर किसी सूनी सड़क पर जाकर क्लच, फुटब्रेकस् और गीयर का इस्तेमाल सिखा दिया—सूनी इस लिये कि वहाँ उसे गोद में बैठा लेते, इससे उन्हें बेशक तकलीफ होती पर लीला को सुभीता रहता। उसके और मिस्टर नन्दा के पैर साथ साथ क्लच और ब्रेक पर पड़ सकते।

लीला मोटर चलाना सीख गई। नन्दा साहब ने दफ्तर से फ़ोन कर दिया और ड्राइवर को दस रुपये देकर कचहरी भेज दिया। उधर से लाइसेंस बन आया था जिस पर यह भी लिखा था कि सार्जेंट साहब ने लीला की ट्राई लेकर, उसे मोटर चलाने योग्य समझ कर, यह लाइसेंस दिया है। यथार्थ में लाइसेंस के लिए अर्ज़ी के फ़ार्म पर भी सार्जेंट साहब ने स्वयं कलम टेढ़ी करके लीला की जगह हस्ताक्षर किए थे। इस लाइसेंस के मिल जाने के पश्चात् लीला की ट्रेनिंग समाप्त हो गई—वह ड्राइवर बन गई।

उस दिन अनारकली में कुछ ख़रीदो-फरोख्त के लिए गई थीं। खरीदना ही खरीदना था, फरोख़्त तो कुछ करना नहीं था पर जाने इस खरीदने को खरीदो-फ़रोख़्त क्यों कहने लग पड़े हैं। राजा ब्रादर्ज की दुकान के सामने से जब वह नीले गुम्बज

की ओर धीरे धीरे चली तो मारवाड़ी स्वदेशी स्टोर्ज़ से विजया निकलती दिखाई पड़ी। ड्राइवर को रोकने को कहा और इसे आवाज़ दे दी 'विजी—ऽ।'

विजया उसकी सहपाठिनी थी। किनेर्ड कालिज में दोनों एक साथ बी. ए. तक पढ़ी थीं फिर विजया सर गंगाराम में बी. टी. के लिए चली गई और लीला ने एम. ए. जायन किया पर पहले वर्ष में ही पढ़ना छोड़ दिया। लीला के लिए कालिज एक शौक की चीज़ थी या बड़ी हद एक वेटिंग रूम और विजया के लिए जरूरत क्योंकि उसे बी. टी. करके, पढ़ लिख-कर कुछ कमाना था। लीला वेटिंग रूम में अपनी शादी का, बरात का इन्तजार कर रही थी और विजया ने फैसला कर लिया था कि ब्याह नहीं करेगी और न ही अपने आप को किसी और पर भार होने देगी। सो वह बी. टी. में चली गई। वायदा तो लीला ने भी किया था ब्याह न करने का पर वह दसवीं श्रेणी में। कालिज में जब उसने ब्रिजिज आफ साँगज की पहली ही कविता पढ़ी थी तो अपने आप को भिन्न रूप में देख नेलगी थी और जब वह हाइवे मैन तक पहुँची थी तो उसने अपने भावी पति के नयन नक्श भी दिल में बना लिए थे। सो दोनों सखियाँ अलग हो गईं। आज बड़ी मुद्दत पीछे लीला ने विजया को देखा था दिल भी उमड़ आया था और दूसरे वह उसे दिखाना भी चाहती थी कि वह एक अमीर घराने में ब्याही गई है, उसके पास एक लाल, भड़कीली, मोटर है सो उसे आवाज दे दी 'विजी—ऽ।'

लीला ने मोटर का दरवाज़ा खोलने का अभिनय किया,

इतनी देर में विजया का सिर अधखुले शीशे से अन्दर घुसने की कोशिश करने लगा था।

ड्राइवर ने दरवाजा खोल दिया। लीला बोली, अन्दर चली आओ न ! कितनी मुद्दत बाद दिखी हो। कहाँ ठहरी हो।

'वहीं।'

'वहीं संत नगर में चाची के पास।'

'ओह् संत नगर में' लीला ने नाक सिकोड़ते हुए कहा। एक बार जब वे विजया के साथ पढ़ती थी, एक बरसात के दिन उसे संत नगर अंग्रेज़ी के नोट्स की कापी लेने जाना पड़ गया था। नहरें भरी थीं और छोटे छोटे बच्चे लकड़ी के तख्तों की बेड़ियाँ बना कर इधर उधर गंदे पानी में तैरते फिरते थे। वे दोनों साईकल पर थीं पर घुटने-घुटने पानी में मोटर भले ही चल जाए साइकल नहीं चल सकती। उन्होंने एक कुली को दो आने पैसे देकर साइकलें उठवा कर उस पार लगवाईं और स्वयं बीच-बीच में धरी ईंटों पर कदम रख कर 'पार' जाने लगीं। पर लीला की ऊँची एडी कहाँ ठहरती वह धम से उसी पानी में जहाँ पन्नालों का मैला भी मिल रहा था गिर पड़ी। उस दिन के बाद वह संत नगर की ओर सूखे दिन भी नहीं गई।

'आओ न मेरे पास ठहरो। गाल्फ रोड़ पर' शब्द मालूम नहीं गॉफ़ या गाल्फ़, लीला नन्दा बी० ए० ने गाल्फ़ ही कहा।

'चाची के पास ही हूँ।'

अरे तो क्या हुआ एक आध दिन हमारे पास भी तो सही। मिस्टर नन्दा तुम्हें मिलकर बहुत खुश होंगे—तुम्हारा कानवो-

केशन वाला फ़ोटो उन्हें बहुत पसन्द है।' यह वाक्य उसने उसी अंदाज में कहना चाहा था जिस में इसका अंग्रेजी अनुवाद गारबो ने अपनी एक फ़िल्म में कहा था पर उससे कुछ बन नहीं पड़ा, भोंडा-सा मालूम हुआ इसीलिए उसने अपना कथन समाप्त न कर हँसते हुए जोड़ दिया 'अभी तक ब्रह्मचर्य ही चल रहा है या कुछ राए बदली भी है?'

बात बदलते हुए विजया ने उत्तर दिया, 'कल जा रही हूँ।'

'अरे कल ही बस। ऐसा नहीं हो सकता।'

'मेरी छुट्टी इतनी ही हैं।'

तो तुम्हारा मतलब यही है कि मैं अगर इत्तफ़ाक से तुम्हें यहाँ न मिल जाती तो तुम बिना मिले ही चलीं जातीं, अच्छा! मैंने कहा छुट्टी और भी ले लो जा सकती है, तार दिया जा सकता है। तुम्हें मेरे पास ठहरना ही पड़ेगा।

'आओ।'

'इस वक्त तो चाची साथ है और मुझे कुछ चीजें खरीदनी हैं।'

'तो फिर कब?

'कल मिलूँगी।'

'जरूर! मैं कार भेज दूँगी। कहाँ रहती हो संत नगर में? देखो शोफ़र कल बीबी जी को संत नगर से लाना होगा। विजी पता बता दो।'

'नहीं मैं स्वयं आ जाऊँगी।'

'अरे तो क्या हुआ? मोटर और होती ही किस लिए है!'

विजया ने ड्राइवर को पता बता दिया कि संत नगर में

अगर वह नत्थू पकोड़े वाले से या इमाम दीन हज्जाम से लीला चिरंजीव लाल का मकान पूछेगा तो उसे झट मिल जाएगा।

ड्राइवरों की तरह ड्राइवर ने कहा, 'जी मैं सब समझ गया। गली-गली मेरी देखी है।'

लीला ने फिर ताकीद की। 'दस बजे गाड़ी पहुँच जाएगी। अच्छा बाई बाई! मिस्टर नन्दा चाय के लिए बैठे इंतजार कर रहे होंगे।'

ड्राइवर ने जब 'बाई-बाई' सुना तो अगले वाक्य की प्रतीक्षा किए बिना ही सेल्फ खेंच लिया जिससे इंजन घर-घर करने लगा। मालूम नहीं ड्राइवर लोग बाहर खड़े हुए का ध्यान क्यों नहीं करते। इंजन के स्टार्ट हो जाने पर तो बाहर का आदमी यही समझने लगता है कि गाड़ी में बैठा आदमी अब जाना चाहता है। लीला का वाक्य समाप्त होते न होते गाड़ी तेज हो चुकी थी—बड़ी गाड़ी मोशन जल्दी पकड़ती है।

× × × ×

विजया घर से चाय का गिलास पी कर चली थी पर फिर उसे यहाँ लीला और मिस्टर नन्दा के साथ बैठ कर एक प्याला पीना ही पड़ा। उसने कहा कि जब ड्राइवर उसे लेने पहुँचा तो वह चाय पी ही रही थी पर नन्दा साहब ने जब ज़ोर देते हुए अंग्रेजी लतटारी जबान में कहा कि चाय का एक प्याला तो किसी भी समय पिया जा सकता है तो वह इच्छा न होते हुए भी टेबल पर बैठ गई। उसके मुँह में इस वक्त छाले से पड़ गए थे। ड्राइवर ने जब दोबारा हार्न बजाया था तो चाची ने कहा 'चाए तैयार है पीता ही जा' और गरम गरम चाए गिलास में

ही बना कर देदी। जल्दी के कारण उसने गिलास को मुँह लगा लिया जिससे उसकी जीभ थोड़ी फूल गई थी और तालू पर का नरम माँस उबल कर एक स्फेद झिल्ली-सा बन गया था। पर नन्दा साहब ने जो कहा है और नन्दा साहब ने उसकी वह तस्वीर, जिसे वह अपनी सब तस्वीरों से बुरा गिनती थी, पसँद की भी और लीला के कहने अनुसार वे उससे मिल कर खुश भी हुए थे इसलिए दर्द रहते हुए भी वह चाय पीने पर तैयार हो गई।

नन्दा साहब चाय के बाद छुटी लेकर चले गए। हाँ जाते वक्त उन्होंने अफ़सोस भी किया कि उन्हें ज्यादा देर विजया के साथ बैठना नहीं मिला। और लीला ने कहा, 'इतना काम है कि खाने तक की फ़ुरसत नहीं।' मालूम नहीं ये लोग काम में इतना क्यों खो जाते हैं कि खाने की भी फ़ुर्सत नहीं निकाल पाते। सुनते तो यही आए हैं कि सब पेट की ही खातिर किया जाता है फिर इसे भरने में क्यों इतनी गफ़लत। दिन भर वही खातों में डूबे रहना, बैंक बेलेन्स को सुजाने की कोशिश करते रहना, आखिर क्यों? पेट के लिए ही तो! पर लीला की इस बात में भी कि उन्हें काम इतना है कि खाने तक की फ़ुर्सुत नहीं मिलती काफ़ी सचाई है।

नन्दा साहब के चले जाने के बाद लीला बोली, 'शोफ़र अभी उन्हें छोड़कर गाड़ी ले आता है फिर हम तुम घूमने चलेंगे इतने में मैं तैयार हो लूँ। तुम रेडियो सुनना चाहो तो रेडियो चलादूँ, कोई किताब पढ़ना चाहो तो—राय (Roye) की यह लेटस्ट नेचर स्टडी आई है। और उसने सुनहरी जिल्द की वह

किताब जिसमें राय के हाथों की खिंची फोटो का संकलन है उसकी ओर बढ़ा दी। 'रामा कृष्णा को आर्डर दे रखा है कि कि नेचर स्टडी पर जो भी लेटस्ट किताब आए उसकी एक कापी हमें भेज दी जाए।

राय की नेचर स्टडी संसार भर में मानी हुई है। दो चार दस छोकरियाँ जिन्हों ने इस स्टडी के नाम पर शर्मो-हय्या को कुर्बानी चढ़ा दिया है, राय के लेन्ज के सामने भिन्न-भिन्न रूपों में नंगी खड़ी हो जाती है लेट जाती है तालाब में कमल फूलों के साथ, समुद्र तट पर फुटबाल के साथ, खेत में धान के साथ, बिस्तर में कुत्ते के साथ, दाँत निकाले आँखें चढ़ाए और राय साहब अलग अलग कोणों से लाइट डालकर अलग अलग कोणों से 'पोज़' ले लेते हैं। यह प्लेटस बाज़ार में जब आते हैं तो तहलका सा मच जाता है, हाथों हाथ बिक जाते हैं। सोहसाइटी में रॉय का नाम चढ़ जाता है, उन लड़कियों को पेट भरने को कुछ मिल जाता है और दोनों के नाम के पीछे 'नेचर स्टडी के दीवाने' जुड़ जाता है और सभ्य समाज उनकी ओर श्रद्धा भरी दृष्टि से देखने लगता है।

विजया ने कहा, 'नहीं मैं तुम्हारे बागीचे में टहलती हूँ, तुम तैयार हो लो।'

'तुम्हारी इच्छा कहो तो कुर्सी डलवा कर छाता लगवा दूँ।' यह सतरंगा छाता सन्यासियों के छत्रों से बहुत कुछ मिलता जुलता है और इसका अंग्रेज़ों में इस्तेमाल होना इस बात का प्रमाण है कि उन्होने भारतवर्ष के सन्यासियों से बहुत कुछ सीखा है।

'नहीं, मैं वैसे ही घूमूँगी।' कह कर विजया उठकर बाहर चली गई और लीला अपने ड्रेसिंग रूम में।

हेंकन की दुकान से विपकार्ड की ब्रीचिज और ड्राइविंग कोट उसने बनवाया था, वही पहनना ठीक समझा। मोटर कार चलाते समय एलर्ट-चुस्त होना बहुत जरूरी है और जितनी चुस्ती ब्रीचिज़ में है उतनी सलवार या साड़ी में नहीं। घोड़े पर चढ़ने के लिए भी यह जरूरी है। पिछले साल मसूरी में पहना करती थी। सो अब वही निकाल कर पहनी। बालों में, जो लम्बे और भारी न थे, नकली पैड देकर छोटे बच्चे के तकिए बराबर जूड़ा बनाया, सफेद दस्ताने पहने और फूलों की क्यारियों में घूम रही विजया के पास आ गई। इस समय वह बिलकुल ऐसी लगती थी जैसे 'मोटर वालों फ़िल्म में वह लड़की 'मोटर वाली'। हाँ इतना अंतर ज़रूर था कि मोटर वाली ने अपने आपको छुपाने के लिए मुँह पर काली नकाब पहन रखी थी और इन्होंने लाल चुभता रंग लगा रखा था। विजया के हाथों में मिट्टी लगा दी थी, फूलों में घास उग आया था और उसने हाथ से ही निकालना आरम्भ कर दिया था।

'क्यों माली गीरी हो रही है क्या ? अरे कपड़े और हाथ खराब कर लोगी।'

'नहीं कुछ नहीं, वैसे ही तुम्हारे फूल देख रही थी। बहुत अच्छे हैं।'

हाँ, मिस्टर नन्दा को फूलों का बहुत शौक है। यह बीज आस्ट्रेलिया से मंगवाए हैं। अरे चलो हाथ मुँह धोलो, ड्राइव पर चलें।

विजया हाथ धो कर तैयार हो गई। लीला ने सोफ़र को गाड़ी गेट से बाहर निकालने के लिए कहा। शोफ़र जब दरवाजा खोल कर खड़ा हो गया तो बोली—'नहीं आज तुम यहीं ठहरो, गाड़ी मैं खुद ले जाऊँगी।'

बाहर निकालने के लिए उसने शोफ़र से इसलिए कहा था कि वह स्वंय अच्छी तरह बैक नहीं सकती थी। गाड़ी बैक करना आसान काम नहीं है। बहुत से लोग जो ट्राई देने जाते हैं केवल बैक करने पर ही फ़ेल हो जाते हैं। पर यहाँ तो लाइसेन्स ट्राई देकर नहीं, फ़ोन पर बनवाया गया था। लीला ड्राइवर की सीट पर बैठ गई और बगल में विजय।

कार चल पड़ने पर ड्राइवर लीला की पोशाक के बारे में सोचता और मन ही मन हंसता हुआ अन्दर चला गया, यहाँ आने से पहले वह एक अंग्रेज के पास नौकर था जिसकी मेम ऐसी ही ब्रीचिज और कोट पहना करती थी। बहुत लोगों के साथ आना जाना था उस मेम का, बहुत से मित्र यार थे। कई बार मोटर चलाते समय उसने शीशे में बैठे बैठे ही मित्रों को चूमते या आलिंग करते देखा था। लीला की ब्रिचिज से उसे उस मेम का ख्याल आ गया था और फिर वह सोचने लगा, क्या यह भी अपने मित्रों के साथ वैसा ही व्यवहार करती होगी जैसे वह मेम—लिबास पहरावे का आदतों पर काफ़ी असर होता है।

गॉफ़ रोड़ से निकल कर नहर पार जब मोटर आई तो लीला ने कहा, यहीं, इसी सड़क पर मिस्टर नन्दा ने मुझे कार चलाना सिखाया था।

विजय ने कहा—कार चलाना भी तो मुश्किल काम है।

'होगा मुश्किल पर मैं तो दो घंटे में ही सीख गई थी। और उस दिन विमला आई थी। उसे भी यूँ ही ड्राइव पर लाई थी, लौटने तक वह भी सीख गई। मामूली है, बस थोड़ी होश्यारी और चुस्ती की जरूरत है फिर जो इन्सान साइकल चला सकता है, मोटर भी आसानी से चला सकता है।'

विजय ने कहा,—'फिर भी कन्ट्रोल करना मुश्किल होगा और एक्सीडेण्ट का डर तो हर वक्त लगा रहता होगा।'

'नहीं, मैं तो अनारकली की भीड़ में भी ले जाती हूँ और टॉप गीयर पर।'

माल रोड के पुल के पास वह पहुँच चुकी थीं। तीन अंग्रेज युवतियाँ नहाने की पोशाकें पहने नहर में नहा रही थीं। पास ही उनकी कार खड़ी थी जिनमें उनके कपड़े धरे थे। लीला बोली—'देखा क्या स्प्रिट है इनमें, जिंदगी का मजा ले रहीं हैं' और मन ही मन वह चाह रही थी कि अगर विजया जरा भी ख्वाइश दिखाए तो वे भी अभी जाकर बेदिंग सूट ले आए और पुल की दूसरी ओर गाड़ी खड़ी करके नहाने लगें। इसी समय रॉय की किताब जिसमें कुछ लड़कियों की समुद्र तट पर नहाने की तस्वीर थी की ओर उसका ध्यान गया पर वह यहाँ हिंदुस्तान जैसे पिछड़े हुए मुल्क में मुमकिन नहीं।

लीला बोली-'लो' तुम्हें भी सिखादूँ मोटर चलाना। करीब हो आओ'

विजया उसके साथ सट कर बैठ गई पर जो गुदगुदी लीला को इस तरह मिस्टर नन्दा के साथ सटकर बैठने में अनु-

भव हुई थी वह अब न हो सकी। उसने स्टीयर विजया के हाथ में दिया और स्वयं एक उस्ताद की तरह बैठ गई। 'यह नीचे क्लच है, ब्रेक है और एक्सलरेटर है। दायां पाओं एक्सलरेटर पर रहता है और बायाँ क्लच के पास। ब्रेक भी दाएँ पाओं से लगाई जाती है। गेयर बदलते वक्त एक्सलरेटर से उठाकर यहाँ रख लेते हैं। यह गीयर है इस वक्त टाप में है और यह स्टीयर, हवा भर भी घुमाने से पहिए काफ़ी घूम जाते हैं। सब से बड़ी चीज बस यही है—क्लच ब्रेक वगैरा तो बस यूँही है' नन्दा साहब के लेक्चर को वह दोहराए जा रही थी।

इसी नहर वाली सड़क पर आर. ए. एफ. की गाड़ियाँ जो कई कई बार तो चार-चार पाँच पाँच ऐसी मोटरों को बराबर होती हैं यहाँ से गुजरती हैं। ड्राइवर इनके अक्सर गोरे या अमेरिकन होते हैं जो अंधाधुंध चलाते हैं। सामने वही एक गाड़ी खड़ी थी, जैसे पहाड़ का पहाड़ और वह अमेरिकन जिसे घर से निकले साल भर होने आया था, नहर के किनारे खड़ा उस पार एक बच्चे को खिलाती हुई नर्स की ओर देख रहा था। वह बारबार सीटी बजाता वह नर्स मान किए बैठी थी। अगर वह पहली ही सीटी पर उसकी ओर देख कर मुसकरा पड़ती तो उस अमेरिकन की आँखों में उसकी कदर घट जाती और शायद आमदन भी उसे कम होती। और पीछे से एक क्रीम रंग की कार हवा की सी तेजी से चली आ रही थी और लीला का ध्यान उसी ओर था, वह क्रीम रंग उसकी आँखों में चुभ गया था। विजया का हाथ इतनी बड़ी ट्रक और इतनी तेज कार को देख कर कुछ ढीला पड़ गया

और वह प्यारी प्यारी लाल गाड़ी उस कालीकलूटी मैली कुचेली ट्रक में जा लगी—बैंग।

दोनों का सर शीशे में लगा। विजया का सिर में शीशा जा चुभा और लीला बच गई उस गोरे का ध्यान उस नर्स से हट कर इस गाड़ी ओर आया। कोई पुरुष गाड़ी चला रहा होता तो उसने दो तीन गालियाँ दी होतीं, कोई ड्राइवर चला रहा होता दो चार ठुड्डे लगाए होते पर इन स्त्रियों को देख कर उसने माफ़ी माँगी।

विजय के सिर से लहू बहने लगा था और उसकी सफ़ेद धोती पर वैसे ही लाल लाल छींटें पड़े थे जैसे किसी की सगाई या ब्याह करके लौटी हो। वह बेहोश हो कर सीट पर लुढ़क पड़ी थी, उसकी एक बाह खिड़की से बाहर लटकने लगी थी। क्रीम रंग सी कार एक दम ब्रेक लगने के कारण 'कचकच' करके रुकी और एक जवान वैसे ही निकला जैसे कि फिल्म में बिलीमोरिया गोहर को बचाने के लिए निकला था। उसने सहानुभूति के दो चार शब्द कहे और उस अमेरीकन की जो फ़स्ट एड बक्स निकाल विजया की पट्टी करने लगा था, सहायता करने का अभिनय सा किया। वैसे वह एक एम्बूलेंस का कप्तान था लेकिन सर्टिफ़ीकेट उसे भी उसी तरह मिला था जैसे लीला को लाइसेंस इसलिए वह ठीक से सहायता कर न सका। हाँ कोशिश उसने जरूर की। बिलीमोरिया ने भी उस फ़िल्म में कोशिश करने का अभिनय किया था और परिणाम स्वरूप गोहर जैसी खूबसूरत युवती का प्यार पाया था। इस जवान का ध्यान भी उस ओर गया। हो सकता है इसे भी इनमें से

किसी का प्यार मिल जाए। किसका मिले, वह किसे पंसद करेगा? यह प्रश्न उसके मन में था, और अपने आप ही उसने उत्तर दिया, जो कोई भी मिल जाए।

अमेरीकन ने पट्टी करके कहा, अगर आप कहें तो मेरी ट्रक आपकी सेवा में हाज़िर है। मैं आपको आपके घर तक छोड़ आ सकता हूँ।

जो वह जवान जो क्रीम रंग की कार से निकला था, बोला, 'नहीं मैं गॉफ़ रोड की तरफ़ ही जा रहा हूँ, आपको लेता जाऊँगा'

उस अमेरीकन की सहायता से उन्होंने विजया को क्रीम रंग की गाड़ी की पिछली सीट पर लिटाया और लीला उस जवान के साथ आधी सीट पर आ बैठी।

कार स्टार्ट करते हुए जवान ने पूछा, 'आखिर एक्सीडेंट हो कैसे गया?'

'यही तो मैं भी हैरान हूँ। पाँच बरस में आजतक एक भी बार ऐसी बात नहीं हुई'

'आपकी नई गाड़ी खराब हो गई। जगह-जगह से पिचक गई है। ऐसा बढ़िया रंग भी तो फिर से नहीं चढ़ सकता।'

'यह रंग, आपकी गाड़ी का रंग इस लाल रंग पर चढ़ सकता है?'

'यह रंग कुछ ज्यादा भड़कीला है। नया ही करवाऊँगी।'

'क्यों नहीं पर पैसे शायद ज्यादा लगेंगे।'

'पैसों का मोल ही पसंदी में है। आपका गाड़ी का रंग मुझे बहुत पसंद है, ऐसा ही करवाऊँगी।'

लीला का गॉफ रोड का बंगला पहुँच चुका था। लीला बोली-ठहरिए मैं आया को बुलाती हूँ, उसकी मदद से'

जवान ने उसी बिलीमोरयी ढंग से कहा, 'आप चिंता न करें, मैं उठा लूँगा' और उसने विजय को वैसे ही उठा लिया जैसे 'टू फेस्ड वोमन' में उस नायक ने गारबो को उठाया था। उसे अब भी ख्याल था कि वह आँखें खोल देगी और ऐसे सहायक को देख कर मुस्करा देगी पर उसकी कोई भी आशा पूरी नहीं उतरी। सोचने लगा गारबो को उसने कैसे उठा लिया था, यह तो पत्थर का पत्थर है। उसे शायद यह ध्यान नहीं था कि वहाँ गारबो उठना चाहती थी यहाँ विजया गिरना चाहती है।

विजया को पलंग पर लिटा कर लीला ने उस जवान से कहा, आपको बहुत तकलीफ़ हुई माफ़ कीजिएगा।

'नहीं-नहीं यह तो मेरा फ़र्ज़ था।' तनिक मुस्काते हुए उस जवान ने कहा। अच्छा इजाज़त'

'बैठिए न खाना तैयार है।'

'जी इस वक्त तो मुझे बहुत जल्दी है।'

'फिर किसी वक्त आएँगे क्या? आइए न इस संडे को।'

'अच्छा' कह कर वह युवक कार में जा बैठा और मोटर स्टार्ट करदी। लीला ने हाथ जोड़ कर नमस्ते की और उड़ती हुई कार की ओर देखती खड़ी रही। वह क्रीम रंग उसकी आँखों में बस गया था।

अफीम की दुकान पर

"धने शाह चार पैसे की दो पुड़ियों में', 'धनेशाह अच्छी देना। तुम्हारा पुराना ग्राहक हूँ, अच्छा तू ही बता मुझ-जैसे तोले-तोलेवाले तेरे कितने बँधे ग्राहक हैं?' धनेशाह आज पाँच पैसे ही बने; चल दे दे तू अढ़ाई की, दे अढ़ाई की। देख चोखी देना फिर जिस दिन ज्यादा पैसे बनेंगे कसर निकाल लेना," ऐसे सम्बोधनों से मैं चिर-परिचित हो गया हूँ, क्योंकि इधर अफीम के ठेके के पास ही गली में अपना घर है।

मुर्गे की बोली के समय धनाशाह दुकान खोल लेता है और तब से लेकर रात के ८-९ बजे तक चौकड़ मार कर बैठा रहता है। पर उसे खाली बैठे मैंने आज तक कभी नहीं देखा। आने जाने वालों का ताँता लगा ही रहता है और धनाशाह के हाथ कल की भाँति काम करते रहते हैं। सच कहता हूँ कि कई बार तो मैंने उसके हाथों के ठीक नाप-तौल को देखने के लिए

उसकी दुकान के आगे खड़े हो जाने की धृष्टता भी की है। सामने ही खड़ा हो कर देख लेता हूँ दुकान पर बढ़ने का साहस बहुत मुद्दत तक न कर सका। डरता था कि कहीं लोग मुझे भी अफ़ीमची न समझ लें, पर अब आस-पास के लोग जान गये हैं कि मैं हिन्दुस्तान बैंक में काम करनेवाला, सीधा-सादा पैंतीस रुपए कमाने वाला क्लर्क हूँ, काम से काम रखता हूँ, अपने में ही मस्त रहता हूँ, अफीम खाने का शौक नहीं, इसलिए मुझे घनेशाह की दुकान पर चढ़ जाने में भी कोई हिचकिचाहट नहीं होती। अस्तु एक बार ही चाकू चलाना उसने सीखा है। मजाल क्या कि तौल में कोई कमी-बेशी रह जाय। तोले की पचानबे या सत्तानबे रत्ती तुल जायँ ऐसा नहीं हो सकता। हाँ, अपनी इच्छा से बेशक रत्ती आधी रत्ती ऊपर डाल दे।

घनेशाह के ग्राहक बहुधा मिल में काम करने वाले मजदूर हैं या रेल्वे इंजन शैड में काम करने वाले नकली हब्शी, या फिर भिखमङ्गों का समाज है। जिसके सदस्य दिन में पाँच पैसे कमा लेने पर अढ़ाई पैसे की तो अफ़ीम ही खा जाते हैं। हाँ, एक श्रेणी के ग्राहक और भी हैं, संख्या बेशक उनकी कम है। यह भी मैं जान न पाता यदि उस दिन वह घटना न हो जाती।

बैंक से लौटा आ रहा था, काफी देर हो चुकी थी। छः माही के दिन थे; पिछले सारे हिसाब की जाँच-पड़ताल करनी थी। प्रातः ८ बजे ही जाना होता और लौटते लौटते भी आठ नौ तो बज ही जाया करते थे और उस पर कागजों का एक एक पुलिन्दा साथ में भी रहता था, रात घर पर बैठकर देखने के लिए। खाना खाने को वक्त नहीं मिलता था, बीवी बच्चों की

बात तो दूर की है। इन क्लर्कों को मेरे ख्याल में ब्याह करना ही न चाहिए, खामखाह फ़ाइलों की सौतन पैदा कर लेते हैं। तबियत कुछ वैसी सी ही थी, ऐसा जान पड़ता था कि हँसी कोसों दूर भाग गई है। जब धनेशाह की दुकान के पास पहुँचा तो सोचा चलो दो-एक रोमांटिक सूरतें ही देखते चलें, कुछ मनोरंजन हो जायगा सो ऊपर चढ़ गया। यह शक्लें, अर्थात् अफ़ीमचियों की सचमुच ही बड़ी दिलचस्प होती हैं। इंजन शैड से निकले हुए, कोयले में काम करने वाले हबशियों के श्वेत श्वेत दाँत बहुत भले लगते हैं; किसी गुज़रे हुए अच्छे ज़माने की याद दिलाते हैं। बढ़ी हुई डाढ़ियों में से, उलझे हुए केशों में से, फटे हुए चीथड़ों में से झाँकी लेता ज़िन्दा दिल, जिसे किसी की कुछ परवाह नहीं, अच्छा लगता है। अफ़ीम की ईंट को देखते ही मुँह से लार बहने लगती है; सारी पा जाता तो दुनिया के दुख-दर्द से एकदम छुटकारा पा जाता। दुनिया इन्हें दीवाना कहती है, चरित्रहीन कहती है, पर यह है कि इसी के जोर पर दीन-दुनिया को भूल जाते हैं। कोई देख के गाली निकालता है, चुप हो रहते हैं, कोई बू के मारे मुँह मोड़कर नाक सिकोड़ देता है यह हँस देते हैं। यह अफीमची !

धनेशाह ने वही तीन टाँगोंवाली कुर्सी, जिसकी चौथी टाँग की जगह साढ़े तीन ईंटे रख दी गई थीं, की ओर संकेत किया।

मैंने धन्यवाद कहा और बैठकर उनके ग्राहकों की ओर देखने लगा। किसी की आँख अन्दर को धँसी हुई थी और किसी की बाहर को उभरी हुई। कोई पुतली के साथ ही लगाकर

और कोई दो फुट पर ले जाकर अफ़ीम की परीक्षा करने लगता कि उसी ईंट से दी गई है या तोल में बेइमानी तो नहीं की गई।

इसी समय एक महाशय कंधे पर एक नन्हे से बच्चे को डाले आए 'धना शाह पाँच पैसे की।' इनकी शकल से तो ऐसा मालूम होता था कि जनाब भी पाँच सवारों में से होंगे अर्थात् अफ़ीम का शौक रखते होंगे; क्योंकि इनकी शक्ल सूरत बाकी अफ़ीमचियों से बहुत कुछ भिन्न थी। बाल अच्छी तरह बने हुए थे। दाढ़ी भी ऐसे मुँड़ी थी जैसे 'जिलेट' का अढ़ाई आनेवाला ब्लेड आज ही शुरू किया हो और वैसे भी अफ़ीमची न लगते थे। ख़ैर मैं उनसे पूछ ही बैठा—अफ़ीम, क्या आप शौक रखते हैं ?

'नहीं जी यह बच्चा, रात-भर चैन नहीं लेने देता क्या किया जाय; डॉक्टर को भी दिखलाया था—'

'तो यह जनाब खाने के आदी हैं।' मैंने बच्चे की पीठ थपकते हुए कहा।

बच्चा खिलखिला उठा।

'जी हाँ, एक पैसे की तीन रोज़ चल जाती है, सच कहता हूँ बाबूजी! रात-भर आराम से कट जाती है।' मैंने कहा 'लेकिन इतनी मासूम उमर में! जानते हैं आप जिगर जला देती है! न जाने कैसे डॉक्टर ने आप को ऐसे उल्टे रास्ते डाल दिया।' एक वर्ष तक तो मैं भी 'मेडिकल स्कूल' में पढ़ा था, नौकरी पाने पर ही तो पढ़ाई छोड़ दी थी। क्यों न मैं अपनी विद्वत्ता बखानता।

इन महाशय ने मानो परवाह ही न की। ताँबे के नकद

पाँच पैसे देकर चलते बने। जब वह चले गए तो मैंने धनाशाह से कहा—शाह जी आप को देनी ही न चाहिए थी। देखते नहीं, क्या फूल-सा बच्चा है अभी से जल जायगा।

'कैसी बातें करते हो बाबू? जो आदमी टिब्बी से चलकर ढब्बी तक आ सकता है क्या चार क़दम और आगे बढ़ कर नहीं खरीद सकता! मेरे साथ कोई गाँठ थोड़े ही बँधी है, इतना ही है न कि सब के साथ हँस कर बोलता हूं, बैठने के लिए कुर्सी देता हूँ, जी-जी करके पुकारता हूं।'

'अच्छा तो टिब्बी से चलकर यहाँ अफ़ीम खरीदने आता है?'

हाँ, और अफ़ीम न दें तो इन का गुज़र ही कैसे चले बाबू? पेशावर! रात को बच्चों को गोदी में लिए खिलाती फिरें या स्वयं दूसरों की गोद में खेलें। आखिर इन्हें भी तो गुज़र करनी है। यह ज़ालिम पेट क्या नहीं करवाता?'

'तो धनाशाह सचमुच ही—?'

'हाँ बाबू, बच्चे क्यों बनते हो, मानो जानते ही कुछ नहीं। अच्छा, इच्छा न रहते हुए भी तुमने डॉक्टरी क्यों छोड़ दी? इसीलिए ही तो कि पेट का गुज़ारा कहीं और बन गया?'

मेरा मन खिन्न हो उठा, मुझ से और अधिक वहाँ ठहरा नहीं गया। मन कहने लगा—देख ली दो-एक दिलचस्प सूरतें? चलो अब घर चलें। और मैं उठ खड़ा हुआ, 'अच्छा शाहजी अब जाऊँगा—अँधेरा हो चला है राह देख रही होगी।'

उस दिन से फिर मैं दुकान पर नहीं चढ़ा। दूर से ही यह

दिलचस्प सम्बोधन सुन लेता हूँ और रोमांटिक सूरतें देख लेता हूं।

× × ×

कभी जब बैंक जाने के लिए इधर ही से निकलता हूं। धनाशाह देख ले तो आवाज़ अवश्य देता है 'क्यों बाबू, ! इतने दिनों से दर्शन नहीं दिये, क्या बात है? आओ न कुछ पान-बान ही खाते जाओ।'

'यों ही शाहजी, काम की अधिकता है; अच्छा लौटती बार आऊँगा, और मैं यही सोचता बैंक के दरवाज़े पर पहुँच जाता हूँ कि धनाशाह पान-वान बेचता है या अफ़ीम? फिर एक बार अन्दर पैर रख लेने पर तो बाहर का ध्यान ही नहीं रहता। 'दो-दो चार, डेढ़ साढ़े पाँच' या टाइप की 'टक-टक तड़' सुनाई देती है। शाम को लौटती बार धनाशाह की दुकान पर भीड़ बहुत होती है। भेड़ों की तरह मिल और शैड के कुली उसके ठेके की ओर भागते हैं। उसे तो अपने कांटे से ही फुर्सत नहीं मिलती कि मुझे बुलाकर कहे—बाबूजी, आपने कहा था लौटते वक्त आऊँगा। मैं भी दूर से ही यह सब 'रोमांटिक और दिलचस्प दृश्य देखता आँख बचाकर घर की गली में घुस पड़ता।

हाँ, कभी-कभी उस बच्चे अफ़ीमची की याद दिल को तंग करती है और अनजाने में ही एक आह-सी निकल जाती है।

रहस्य

छुट्टी का दिन था और नाश्ते में कुछ देर हो गई थी कारण इसका यह भी था कि उस दिन आस्मान पर बादल छाए हुए थे। मैं नाश्ता कर चुका था और वह अभी चीनी की प्लेट धो रही थी। यह उस की बुरी आदत है। मैंने लाख बार कहा है कि पीछे से नौकर धो लेगा लेकिन वह सुनती ही नहीं। कहती है, चीनी की प्लेटें उसी वक्त धो लेनी चाहिएँ नहीं तो खराब हो जाती हैं और नौकरों मुओं का क्या लगता है, आराम से तो कोई काम करते ही नहीं, तोड़-फोड़ दें तो कौन जिमावार होगा।

सो मैं बिलकुल खाली था। पहले निश्चित किए हुए प्रोग्राम के अनुसार आज हमें शालामार जाना था लेकिन इस बरसात के कारण वह प्रोग्राम भी कैंसल हुआ दीखता था। चोपड़ाजी की सुबह-सुबह ही सपरिवार आने की बात थी, वह भी न आए सो मन एक शून्य-सा था जो भर नहीं रहा था।

पिछले मास का 'हंस' उठाया 'रानी' उठाई, 'ट्रू स्टोरी' उठाई लेकिन मन किसी एक में भी न लगा। जभी एक विचार न

जाने कहाँ से आ गया। आज तीन मास होने आए हैं, रवि न जाने कहाँ गायब हो गया है। सामान उसका यहाँ पड़ा है और उसने आज तक खबर ही नहीं ली। न जाने उस में क्या-क्या भरा है। इतना सोचते ही एक आशंका की लहर मेरे मस्तिष्क में दौड़ गई और मेरा सारा शरीर एकबारगी कांप उठा। रवि के सामान में हरएक चीज़ की आशा की जा सकती है—पिस्तौल की, ज़हर की, क्लोरोफ़ार्म की, चाकू-छुरी की! शायद इसीलिए वह अपना सामान यहीं छोड़ कर स्वयं फ़रार हो गया है। कहीं पुलीस उसे खोजती-खोजती यहाँ न आ निकले और मेरी तलाशी न हो जाए। इस विचार ने मेरे दिमाग़ में घर कर लिया और मैंने उसका सामान खोल कर एक बार देख लेने का निश्चय कर लिया। ठीक है, रविवार है, बरसात पड़ती है, बाहर आना-जाना हो नहीं सकता, वह भी अपनी प्लेटों में मस्त है। सो मैं कमरे में घुस गया, अंदर से सांकल लगा ली और सामान खोलने का निश्चय किया!

फिर विचार धारा बदली। किसी की धरोहर मेरे पास पड़ी है, उसे मुझ में इतना विश्वास है जभी यह दो-दो ट्रंक यहाँ छोड़ गया है, उस की अनुमति बिना खोलना कहाँ तक मुनासिब होगा और यदि कल ही आ कर वह पूछने लगे कि मेरे ताले तुम ने क्यों तोड़े तो मैं क्या उत्तर दूँगा। उस के सामने मैं क्या मुँह खोल सकूँगा?—

नहीं ऐसा नहीं हो सकता—इतना सोच मैंने ताले तोड़ने का ख्याल छोड़ दिया और कुर्सी पर बैठ गया। फिर ध्यान आया, क्या हर्ज है, मुझे अपनी इज़्ज़त-आबरू का ख्याल होना

चाहिए, कल को पुलीस उस का पीछा करते मेरी तलाशी ले और उस के ट्रंकों में से कुछ ऐसी-वैसी चीज निकल आए, मेरी क्या पोजीशन होगी ? इस में सन्देह नहीं कि मित्र की सहायता करनी चाहिए लेकिन यह कहाँ लिखा है कि उस सहायता के लिए अपनी जान खतरे में डाल दी जाए।

मैं कुर्सी से उठा और ताले को इधर-उधर से देखा। देखते ही भाँप गया कि यह आसानी से नहीं टूटने के और इसलिए उन्हें तोड़ने का निश्चय और भी पक्का हो गया। सोचा—इस रवि को आखिर हो क्या गया है ? इसमें इतनी तबदीली आ ही कैसे गई ? उससे तो ऐसी आशा नहीं की जा सकती थी। वह मेरा सब से पुराना सहपाठी और बाल-सखा था, मैं उसे अच्छी तरह जानता हूँ। ऐसा गुपचुप लड़का तो मैंने आज तक कहीं देखा नहीं। फिर यह तबदीली अचानक कैसे आ गई ? हिसाब और अंग्रेजी में वह हमेशा प्रथम आया करता था और मुझे जहाँ तक ख्याल है उसने एम० ए० भी दो विषयों में किया है, आसनी से कहीं भी अच्छी सी नौकरी पा सकता था, अपना घर-बार बसा सकता था लेकिन यह रूप ! आखिर क्यों ?

बहुत अंतर्द्वंद के बाद मैंने ताला तोड़ने का निश्चय किया पर कमरे में हथौड़ी नहीं मिली। ट्रंक के नीचेसे एक ईंट निकाली और ताला तोड़ने लगा लेकिन ईंट टूट गई और ताला टस से मस न हुआ। मालूम नहीं कहाँ से चोर-ताले बनवाए है उसने। ईंट तो दो-एक और भी पड़ी थीं लेकिन मैंने ताले की ओर देख कर सहज ही जान लिया कि किसी उस्ताद के

हाथ के बने हैं। कुम्हारों की ईंटों से टूटने के नहीं। सो रसोई घर से पत्थर के कोयले तोड़ने वाली हथौड़ी लाने की सोची।

उसने पूछा—'क्यों क्या जरूरत आ पड़ी हथौड़ी की? क्या तोड़ना है?'

मैंने यूँही उत्तर दिया—'रवि के ट्रँक पड़े हैं ही, उसने खोज-खबर ही नहीं ली। देखता हूँ कि आखिर धरा क्या है, पर ताले बहुत बड़े-बड़े और मजबूत हैं। और वहाँ से प्लास भी जरा दे देना।'

'और यदि कल ही आ कर वह पूछे तो तुम क्या जवाब दोगे?'—उसने पूछा।

'इसकी चिन्ता तुम्हें नहीं करनी होगी। मुझे आखिर देखना तो है कि मेरे घर में पड़ा क्या है—रवि को जवाब मैं दे दूँगा। लाओ वहाँ से प्लास और हथौड़ी दे दो।'

मेरे हाथ में प्लास और हथौड़ी देते हुए वह कहने लगी—'कहीं कोई ऐसी-वैसी चीज न हो?'

मैंने कहा—'जभी तो देखना चाहता हूँ।' और प्लास और हथौड़ी लेकर अपने कमरे में चला आया, अंदर से सांकल बंद कर ली और ताला तोड़ने लगा।

इतने हथौड़े मारने पड़े और इतनी लड़ाई करनी पड़ी कि मुझे पसीना आने लगा जब कहीं एक ताला टूटा। ताले पर हथौड़े मारते-मारते कभी-कभी रवि को गाली देने लगता—पूछो, भई तुम्हारे पास कौन से हीरे पड़े हैं जो मामूली ट्रँकों में ऐसे ताले जड़ रखे हैं! और कभी सराहने लगता—सच्चू में चीज खरीदने का शऊर तो है! हम तो बाजार में यूंही पैसे फेंक के

आ जाते हैं। अभी उस दिन ही एक ताले की चाबी नहीं मिल रही थी कि चोपड़ा ने स्वेटर बुनने की सलाई से ही ताला खोल दिया। यह भी कोई ताला हुआ।

ताला टूटते ही एक आराम की सांस ली और डरते-डरते और साथ ही कुछ उत्सुकता से ट्रंक खोला। बेहद खुश्बू आई जैसे उस ट्रंक में कन्नोजी चमेली के सैंट की सैकड़ों शीशियाँ उड़ेल दी गई हों। एक बार तो मस्ती आ गयी।

ऊपर का कपड़ा उठाते ही एक लड़की की बड़े साइज़ की तस्वीर दिखाई दी। कह सकता हूं कि लड़की बहुत सुन्दर होगी। दृष्टि उसकी नीचे थी, ओठों, नाक के पास और आँखों की भवों में एक मुस्कान दौड़ रही थी। दो-दो लटें उस के गालों पर आई हुई थीं। काले रंग का बंद गले का जम्पर था। और सफ़ेद जार्जेट की साड़ी।

कुछ देर मैं खड़ा उसे देखता रहा—रवि के ट्रंक में ऐसी तस्वीर! एकबारगी मेरे मस्तिष्क में एक और लहर दौड़ गई। शायद उस की प्रेमिका हो, रवि इसका प्रेमी हो और क्योंकि यह उसे मिल नहीं सकी, जभी मारा-मारा फिर रहा है। मुझे ठीक पता है, रवि ने अभी तक ब्याह नहीं किया। एक बार सुना था होने वाला है लेकिन फिर नहीं हुआ। शीघ्र ही समझ आ गया कि रवि इसी लिए मारा-मारा फिर रहा है। लेकिन उस ने मुझे बताया तक नहीं।

तस्वीर को चिमनी पर रख दिया और स्वयं दूर खड़े होकर उसे अलग-अलग कोणों से देखने लगा। दसेक मिनट देखता रहा फिर समय का ख्याल कर दूसरी चीजें निकालने

लगा। हाँ, कभी-कभी बीच में दृष्टि उठा कर उस तस्वीर की ओर देख लेता और इक आह सी निकल जाती।

पांच-छः बढ़िया सूट निकले। रवि के पास ऐसे सूट हैं फिर भी वह फटे हाल रहता है—बस एक धोती और एक कुर्ता और घर से निकला भी उसी एक धोती कुर्ते में है! इन पांच-छः सूटों के नीचे एक सुनहरी रंग का छोटा-सा, सुन्दर बक्स था। खोल कर देखा। ऊपर-ऊपर कुछ नोट पड़े थे—सौ-सौ के, दस-दस के, पांच-पांच के—गिने। कुल दो हज़ार रुपये थे और उन के नीचे कुछ पत्र जिन में से सैंट की गंध आ रही थी।

पागल कहीं का। रुपये इस तरह से रखे जाते हैं? मुझे ही कह देता, बैंक में जमा कर दिये जाते। कल को और कुछ नहीं, चोरी ही हो जाती, कौन ज़िमावार होता। खत उठा कर देखे, सोचा पढ़ूं, इस से रवि के बारे में काफ़ी कुछ ज्ञात हो जायगा लेकिन फिर ध्यान आया, किसी के पत्र पढ़ने का मुझे क्या अधिकार है? मेरे पत्र ही कोई और पढ़ने लगे, मैं मरने मारने पर उतारू हो जाऊँ—बंद कर के रख दिए फिर एक उत्सुकता हुई—यह शायद इसी लड़की के पत्र हैं। देखूं तो, अधिक नहीं, नाम तो देखूं क्या है और मैं ने ऊपर का पत्र उठाया। हल्के-हल्के हरे रंग के पैड पर केवल यही दो लाइन लिखी थीं—

रवि—उस बर्फ़ानी नदी पर बांध बंध गया है। वह अब इस ओर से नहीं बहा करेगी। सुना है उस से नहरें निकाली जाएँगी।—लीला

समझ तो कुछ विशेष आया नहीं हाँ—उत्सुकता बढ़ गई। दूसरे पत्र पढ़ने को जी चाहा लेकिन फिर किसी समय के लिए

रख कर और चीजें देखने लगा। मन नहीं माना फिर बक्स खोला। दूसरा फिर निकाला—यह भी वैसे ही हरे रंग के क़ागज़ पर था और वैसी ही दो पंक्तियाँ थीं।

रवि—आकाश में घनघोर घटाएँ छा रही हैं। मुद्दत हुई है वर्षा हुए, अब के तो आशा है ज़रूर झड़ी लगेगी। मैं भी कहती हूं कि ऐसी झड़ी लगे कि रुकने में ही न आए और उस पानी में सब कुछ बह जाए। इतना अन्धकार है कि दोपहर के समय अँधेरा पड़ रहा है और मैं कुछ देख नहीं पाती।

लीला।

इस पत्र पर दो-चार जगह पानी की बूंदें पड़ी थीं और लिखावट अस्पष्ट हो गई थी। सोचा, अवश्य ही यह उस लड़की लीला के आँसू हैं जो उस के पत्र लिखते-लिखते टपक पड़े हैं और यह मेघ भी शायद उस की आँखों में हैं। अनजाने में ही एक आह निकल गई। सब कुछ अस्पष्ट था लेकिन फिर भी मन के बहुत निकट लगता था। आँखें बरबस चिमनी पर धरी उस फ़ोटोग्राफ़ की ओर घूम जातीं लेकिन वहाँ मुझे आँख नहीं दिखाई दीं, केवल आँखों के बंद ढकने दिखाइ दिए। ओह! ऐसी आँखों में बरसात—जभी तो इतना झुक आइ हैं और जभी तो इतनी भारी हैं—पानी से लबालब भरे काले-काले बादलों के समान। गाल, अभी गालों पर बुंदियाँ दिखाई देंगी।

यह दूसरा पत्र उत्सुकता बढ़ाने के लिए क़ाफ़ी था, मैं ने और दो-चार पत्र पढ़े और यह जान लिया कि कोई त्रिकोण बनी है जिस के कोण बराबर नहीं हैं और इसीलिए उस की भुजाएँ भी बराबर नहीं हैं और इसीलिए यह सब फ़साद खड़ा

हो रहा है। देखा, कोई सौ पत्रों के लगभग थे। पढ़ने लगता तो निश्चय ही सारा दिन खतम हो जाता क्योंकि एक पत्र को एक ही बार तो नहीं पढ़ना था। न जाने किस अज्ञात प्रेरणा के कारण मैं हरएक पत्र तीन-चार बार पढ़ता था। दसेक पत्र पढ़ कर मैं ने बक्स बंद कर दिया और फिर ट्रंक खाली करने लगा। साथ ही साथ कल्पना के मंच पर इस त्रिकोण के अभिनेताओं को कई एक रूपों में देखने लगा। एक रवि है, एक लीला और एक 'कोई और'। रवि लीला को चाहता है, लीला रवि को चाहती है। 'कोई और' लीला को चाहता है, लीला की माँ उस 'कोई और' को पसंद करती है। रवि कॉलेज में पढ़ता है। लीला पहले पढ़ती थी अब छोड़ दिया है और वह 'कोई और' कहीं बड़ा अफ़सर है। उस 'किसी और' के पास मोटर है। लीला तांगे में बैठती है, रवि साइकल ही चलाता है। लेकिन बार-बार मेरी दृष्टि उस फ़ोटो की ओर चली जाती जिसे मैंने निश्चय रूप से लीला की समझ लिया था।

टॉयलट का बहुत सा सामान निकला। न जाने कितनी ही किसमों के सैंट, क्रीमें, तेल। कुछ समझ नहीं आया कि रवि को ऐसी चीज़ों से कब से वास्ता पड़ा है। फ़ैशनेबल से फ़ैशनेबल परी भी अपने वैनिटी केस में शायद इतनी चीजें रखती हो जितनी कि रवि के ट्रंक से निकलीं। सब से निचली तह के ऊपर तीन बोतल थीं। दो बंद थीं—बिलकुल भरी हुई और तीसरी कुछ खाली थी। उठा कर देखी, कोई शराब थी। एक बार जी काँप उठा। रवि यहाँ तक पहुंच गया है कि अपने ट्रंक में भी तीन-तीन बोतलें रखने लगा है। कॉलेज के लड़के एक

दिन होटल में बीयर पीने बैठे थे और मैं भी किसी तरह राज़ी हो गया था। जब रवि को पता चला था कि मैं भी उन के साथ था तो सचमुच ही रोते-रोते उस ने रुँधे कंठ में कहा था—तुम भी।

उस के यह शब्द तीर की भाँति मेरे मन में जा चुभे थे और मैं ने फिर कभी न पीने की शपथ ली थी। जब कहीं वह चुप हुआ था। यह वही रवि है! तीन-तीन बोतलें उस के ट्रंक में से निकल रही हैं और फिर ऐसी शराब जो हमा-जमा को नसीब ही नहीं होती।

एकबारगी ध्यान 'देवदास' पर गया। बहुत से लोग आज-कल 'देवदास' हो गए हैं या वही बनने का अभिनय करते हैं क्योंकि 'देवदास' अब एक छायामय मनुष्य की कल्पना ही नहीं है बल्कि बरूआ ने उसे सजीव, जीता-जागता, हाड़-मांस का इंसान बना दिया है। लेकिन रवि ने तो शायद 'देवदास' देखा ही नहीं, वह तो सिनेमा के बहुत ख़िलाफ़ था। लड़के जब खड़े हो कर डींग मारा करते थे कि उन्हों ने 'देवदास' पचास-पचास बार देखा है तो वह एक कृत्रिम हँसी हँस दिया करता था। लेकिन प्रकृति तो मनुष्य की एक ही है। क्या मालूम जिन परिस्थितियों में 'देवदास' ने पीनी शुरू की थी, इस ने भी उन्हीं परिस्थितियों में पीना शुरू किया हो।…

बोतलें निकाल कर बाहर रखीं और आख़िरी तह उठाई। वहाँ मुझे रवि की एक तस्वीर मिली। यह रवि का कॉलेज के समय का बेस्ट फ़ोटोग्राफ़ था। ऊपर तिथि दी हुई थी और नीचे लिखा था, 'फ़्राम माई ओन टू माई ओन।' उठा कर उस

तस्वीर को चिमनी पर पड़ी उसकी तस्वीर के साथ रख दिया और देखने लगा। सचमुच ही ऐसी जोड़ियाँ दुनियाँ में बहुत कम होंगी। फिर रवि की, जिस दिन वह मेरे पास आया था, हालत याद कर के अनजाने में ही एक आह निकल गई और आँखें गीली हो आईं। बहुत ज्यादा पीने लग गया है शायद इसी लिए उसका आज यही हाल है!

धीरे धीरे सब चीजें तह लगा कर अन्दर रखदीं। बोतलें और वह सुनहरी बक्स अनजाने ही में बाहर रह गए। कुछ देर निश्चल बैठा उन्हें देखता रहा फिर चिमनी पर दोनों कोहनियां टिका देखने लगा।

'अभी तक क्या कर रहे हो, देखो एक बजने को आया है। खाना नहीं होगा क्या? दरवाज़ा खोलो' किवाड़ बजाते हुए उस ने ऊंचे स्वर में कहा। मैं मानो अपने आप में आ गया। उठ कर दरवाज़ खोला।

ट्रक बंद देख कर उस ने फिर पूछा—'क्यों क्या कर रहे हो अब?' फिर तस्वीरों की ओर देख कर बोली—हैं! यह क्या?

'बिन्नी, यह तस्वीरें पास-पास पड़ी कैसी लग रही हैं?'

'कहाँ देखूं?' कह कर वह उनके सामने आ खड़ी हुई—'अरे लीला!' अचानक उसके मुँह से निकला—

'कहाँ से आई है यह तस्वीर?'

'हाँ लीला, लेकिन तुम कैसे जानती हो?' उत्साह से पूछा।

'जानती हूं। यह हमारे साथ पढ़ा करती थी' इतना कहते ही एक लम्बी आह उसके हृदय प्रदेश के नीचे से फिसल कर बाहर हो गई।

'क्यों बिन्नी ?'

'हाँ। जाने भगवान ऐसी चीजें बना कर फिर उन्हें इतनी जल्दी उठा क्यों लेता है!'

'सचमुच बिन्नी!'

'हाँ। तीनेक मास पहले इसकी मृत्यु हुई है। लेकिन यहाँ कैसे आई ?'

'यह रवि की तस्वीर देखी है बिन्नी ? यह तब का रवि है, अब का तो तुमने देख लिया है।'

'यह रवि है ?' तस्वीर उठाते हुए उसने पूछा—'हाँ वेही तो हैं।' फिर तस्वीर धरते हुए बोली—'चलो खाना खा लो, अबेर हो जाएगी।'

'और यह बोतलें और यह बक्स, यह भी उसी के हैं ?'

'बिन्नी, मैं नहीं मानता था कि रवि पीने लगा होगा लेकिन वह सचमुच पिअक्कड़ हो गया है। यह बोतलें उसीकी हैं, साथ-साथ लिए फिरता है। यह तो एक ही से निकली हैं। दूसरे में न जाने क्या हो।'

'और यह बक्स ?'

'इस में दो हजार के क़रीब रुपये हैं और कुछ पत्र जो कभी लीला ने रवि को लिखे थे जिनकी क़ीमत वह शायद उन रुपयों से, अपने जीवन से, हरएक चीज से ज्यादा आँकता है।'

'अच्छा रखो इन्हें अंदर और खाना खा लो। बाद में देख लेना यह सब चीजें।'

'अच्छा बिन्नी, पीओगी ? मेरा जी आज पीने को कर आया है'—अचानक मैं कह उठा। कहने से पहले मुझे ठीक याद है,

मेरे मस्तिष्क में ऐसा कोई विचार नहीं था।

'क्या-आ ?' उसे जैसे किसी ने डंक मारा हो।

'मैंने पूछा, पीओगी ? क्या हर्ज है ? दुनियाँ पीती है।'

वह चुपचाप खोई हुई सी खड़ी रही।

'शराब दुनियाँ में दो किस्म के आदमियों के लिए बनी है। एक तो वह जो बहुत दुःखी है और अपना 'ग़म गलत' करना चाहते हैं और दूसरे वह जिन्हें कोई चिंता नहीं, आराम से रहते हैं और अपनी जिंदगी में थोड़ी रंगीनी, थोड़ी मस्ती लाना चाहते हैं। आओ न, आज पी कर देखें तो सही—ऐसा दिन भी फिर कब आएगा और यह शराब भी मुझे बहुत बढ़िया दिखती है।'

'आज तुम कैसी बातें कर रहे हो ?'

'ठीक तो है बिन्नी, तुम खुश नहीं हो क्या ? तुम उस खुशी में थोड़ी मस्ती नहीं लाना चाहती ? चलो आज पी कर देख लें। क्या है, अपने घर में ही बैठ कर पती पत्नी ही तो पीएँगे। हर्ज ही क्या है ?'

'छोड़ो भी, आज यह नया भूत सवार हुआ है। खाना ठण्ढा हुआ जा रहा है। यह बक्स और बोतलें एक ओर रख दो', फिर कुछ सोच कर कहा—'ठहरो, मैं और ताला ला देती हूँ। खुला तो आखिर नहीं छोड़ा जा सकता !'

खाना खाने के समय हम दोनों कुछ चुप-चुप थे। मैं कुछ नहीं बोला और वह भी चुप थी। खाना खा लेने के बाद मैं फिर अपने कमरे में आ बैठा और एक एक कर के सब खत पढ़ डाले। इन में रवि के लिखे हुए कुछ पत्रों की नक़लें

भी थीं। फिर सब पत्र बंद कर के बक्स में रख दिए। बक्स ट्रँक में बंद कर दिया और स्वयं बाहर जाने को कपड़े बदल डाले।

'चाय का वक्त हो गया' उस ने फिर दरवाज़ा खट् खटाते हुए कहा।

'नहीं मैं चाय नहीं पीऊँगा' दरवाज़ा खोलते हुए मैं ने कहा।

'लेकिन तुम जा कहाँ रहे हो और इस पानी में ?'

'मैं अभी आता हूँ ज्यादा देरी नहीं लगेगी, चौक तक ही जाना है।' मैं ने दोनों तस्वीरों को अखबार के क़ाग़ज़ में ले लिया और बाहर को चल दिया।

'अरे छाता भी नहीं लोगे क्या ? हाए रे, इतना खोए हैं, दिखता नहीं है, पानी पड़ रहा है। सर्दी लग जाएगी।'

'ओह हाँ, छाता दो, तस्वीरें भींग जाएँगी। मैं इन्हें फ्रेम करवाने के लिए देने जा रहा हूँ। अभी आता हूँ' और घर से बाहर हो गया। जब मैं आधेक घण्टे पीछे लौटा तो मेरी जेब में दो खाली पैग भी थे जो मैं अभी अभी बाजार से खरीदता लाया था। अन्दर घुसा ही था कि उसने पूछा—'चाय ले आऊँ, सर्दी बहुत पड़ रही है ?'

'अरे चाय क्या करेगी ? छोड़ो परे। आज मैं कहता हूँ, दो घूँट पी ही लूँ-नहीं निश्चय ही मुझे सर्दी लग जाएगी। ब्रांडी भी तो घर नहीं होगी, रवि की बोतल उठा लेता हूँ' और मैं लपक कर बोतल उठा लाया।

वह कुछ बोली नहीं।

अन्दर क़मरे में जाकर मैंने मेज़ पर दोनों पैग रखे, बोतल खोली और फिर आवाज़ दी—'सुनती हो ? ज़रा यहाँ आना तो !'

वह शंकित भाव से अन्दर आई और दो पैग देख कर हैरान हो गई। मेरे मुँह पर दृष्टि जमा कर उस ने प्रश्न किया—'क्या है ?'

'बैठो' मैंने कहा।

वह खड़ी रही।

'बैठो। आज तुम मेरा साथ न दोगी ?' मैंने पैगों में थोड़ी-थोड़ी डालते हुए कहा।

'पागल हुए हो ? मुझ से न होगा।'

'बैठो ! तुम मेरा साथ न दोगी तो मैं किसी और को ढूँढ़ने जाऊँगा। लो ज़िंदगी का लुत्फ़ एक बार' न जाने उस समय मुझ पर क्या भूत सवार था।

वह चलने लगी।

'बिन्नी !' मैंने ज़रा ऊँचे स्वर में आवाज़ दी। वह बेचारी धीरे-धीरे सामने वाली कुर्सी पर आ बैठी। मैंने एक पैग उस की ओर बढ़ाते हुए कहा—'बिन्नी यह ज़िंदगी का रस है। समय रहते जितना ले सकती हो, ले लो, फिर कौन जाने क्या होता है। रवि को ही देख लो। और इस में कोई बुराई नहीं, पति पत्नी घर में बैठ कर जो जी में आवे करें। अच्छा टूयू-अर हैल्थ·········'

मेरे इतना कहते ही एक झटके से किवाड़ खुल गया और एक सन्यासी ने अन्दर प्रवेश किया। मुझे पहचानते अधिक

देर नहीं लगी, यह रवि था। उस के सिर के बाल, दाढ़ी और मूंछें बिलकुल साफ़ थीं। भगवे रंग का एक लम्बा सा चोगा था, पैरों में एक चप्पल और हाथ में छः फुट का एक बांस और चिप्पी। मैं काठ की भाँति बैठा रहा।

'माफ़ करना, इस वक्त तुम'.......'

'नहीं नहीं रवि! आओ तुम; ऐसी कोई बात नहीं है।'

'मैं बाहर बैठता हूँ, फ़ारिग़ हो लो। हाँ, ज़रा जल्दी करना, मेरे पास वक्त ज्यादा नहीं है' इतना कहते ही वह बाहर हो गया। बिन्नी भी बैठी देखती रह गई।

'अरे रवि, पगले हुए हो क्या? आओ तो। यह सब क्या है? तुम्हें हो क्या गया है? तीन मास होने आए हैं, तुम ने खबर ही नहीं दी।'

'हाँ सो तो है लेकिन मेरे पास यह सब कहने का वक्त नहीं है' अपनी चिप्पी से दो तालियाँ निकाल कर मेरी ओर बढ़ाते हुए उस ने कहा—'यह मेरे ट्रँकों की चाबियाँ हैं। जो चीज़ तुम्हारे काम आ सके, काम में ले आना, जो न आ सके उसे फेंक देना। एक सुनहरी संदूक और दो तस्वीरें हैं; वह तुम्हारे किसी काम की नहीं। हाँ शायद कुछ रुपये उस संदूक में हों, वह निकाल लेना और जितनी जल्दी हो सके उस संदूक को और उन तस्वीरों को जला देना। मैं जा रहा हूं, मुझे यहाँ अधिक ठहरने की आज्ञा नहीं। अच्छा नमस्कार। बिन्नी भाभी, मुझे क्षमा करना, मैं ने फ़िज़ूल दखल दिया।' इतना कहते ही वह बाहर हो गया।

बिन्नी चुपचाप खड़ी देखती रही। मैं भी पहले खड़ा रहा फिर उस के पीछे भागा लेकिन लाख मिन्नतें करने पर भी वह किसी भी तरह वापिस आने पर राजी नहीं हुआ। वापिस आ कर देखा, बिन्नी उसी तरह बैठी है कहा—'बैठी हो ?'

उस ने मेरी ओर देख भर लिया।

मैं ने न जाने क्यों उस बोतल और उन पैगों को उठा कर खिड़की में से बाहर फेंक दिया और क्यों चुपचाप वहीं उस कुर्सी में डूब गया ?

कोई क्या कहेगा

एक युवक—बधाई हो डाक्टर साहब !

दूसरा युवक—कहो भाई राकेश, लड़का होने का कुछ खिलाओगे नहीं ?

तीसरा युवक—अरे यार कुछ जल्दी हो गया तुम्हारा बच्चा ! अभी से बाप बनने की धुन सवार हो गई !

पहला—यार इन जनाब की तरफ छ: माही का रिवाज है ?

दूसरा—मालूम होता है हमारी भाभी हैं खूब सरसब्ज़ !

तीसरा—खाद अच्छी डाली गई है !

(हंसी)

× × ×

एक बुढ़िया—सुना तुमने, दुलारी की बहु को छः माहा बच्चा हुआ है।

दूसरी बुढ़िया—मैके से सोगात लेकर चली होगी। मैं भी कहूँ पेट इतना फूला है, अभी तो घर आए महीने पाँच हुए हैं।

तीसरी बुढ़िया—कुछ न पूछो बहन, आजकल की छोकरियाँ क्या कुछ न कर बैठें ! किसी यार के साथ—

पहली—तो और क्या! अधनंगी हो कर तो गली-गली नाचती फिरती हैं। यही न हो तो—

(एक और भागी भागी आती है)

आगन्तुक—अरी सुना, राकेश के घर छः माहा बच्चा हुआ है।

दूसरी—मैके से लाई थी।

तीसरी—खाँदान ही ऐसा है। जिसके बाप-दादा—

आगन्तुक—सब कर्मों का फल है।

पहली—नीच हैं नीच!

दूसरी—धिक्कार है!

तीसरी—धिक्कार है!

× × ×

एक बूढ़ा—(हुक्के का कस लेते हुए) अरे सुना, राकेश का लड़का हुआ है।

दूसरा बूढ़ा—अभी से? अभी कल तो ब्याह हुआ है।

तीसरा बूढ़ा—अजी यूँ कहो कि कल भाँवरे हुए हैं भाँवरे। ब्याह जाने कब हुआ था? देख लो पूरे पाँच महीने बाद जन दिया है।

पहला—इस कलजुग में और क्या होगा! उस दिन उनके हाँ गया था। मेरे सामने नंगे मुँह आई। एक हाथ में मिठाई की प्लेट और दूसरे हाथ में शर्बत का गिलास। मेरा तो जन्म गया—हे भगवान मुझे अब तू अपनी शरण में ले ले।

दूसरा—जैसे बाप दादा वैसे बेटे बेटियाँ।

तीसरा—नीचों के नीच होते हैं धूर्तों के धूर्त।

× × ×

राकेश—जाओ निकल जाओ यहाँ से। मुँह पर कालिख पोत लो। शर्म नहीं आती न।

(पैर से युवती की छाती पर ठोकर मारता है।
युवती धड़ाम से जमीन पर गिरती है)

पैदा होते ही क्यों न मर गई। खुद तो बरबाद हुई हो, मुझे भी..........।

युवती—आह!

राकेश—जाओ, मुझे फिर मुँह न दिखाना। चार माह का बच्चा पेट में लिए फिरती है शर्म नहीं आती। (युवती चीख मारकर बेहोश हो जाती है) पहले से कह दिया होता मैंने एक खसम कर लिया है। उस वक्त मुँह में दही जम गया था क्या?

(एक अधेड़ उम्र की औरत, राकेश की माँ अंदर आती है)

माँ—हाय हाय, यह क्या कर रहे हो बेटा! पागल हुए हो! बहुरानी, हाय मैं मर गई (युवती का सिर गोदी में ले लेती है) क्या हुआ है तुम्हें, बहकी-बहकी बातें—

राकेश—जा माँ तू यहाँ से, इसे मत छू कहीं तू भी—

माँ—क्या बकता है राकेश! क्या खा लिया तैने?

राकेश—खा लिया है! इसी से पूछो तो भला—पेट में सम्हाल रखा है चार महीने से।

माँ—राकेश!

राकेश—ठीक है माँ। इसके पेट में बच्चा है माँ। तुमने मुझे पुरानी, सैकिंड हैंड बीबी ले दी है माँ। तुमने मेरी नहीं मानी, अपने मन की की, तो देख लो अब खुश हो लो अपनी

बहुरानी को देख देख कर, बत्तियाँ बुझा कर चाँद के टुकड़े को निहारो।

माँ—तू क्या कह रहा है बेटा ?

राकेश—पेट पर हाथ धर कर देख न लो। तुमने मुझे कहीं का न रखा। जीते जी मौत दिखा दी। कल मैं दुनियाँ को मुँह कैसे दिखाऊँगा। पाँच महीने बाद इसकी करतूतों का फल जब दुनियाँ देखेगी—

माँ—बेहोश हो गई है। तूने-तूने धक्का दिया था ?

राकेश—मर जाती तो बेहतर था, या मैं ही मर जाऊँ।

माँ—ऐसा न कहो राकेश बेटा, सब्र करो, किस्मत में यही कुछ लिखा था। अब भी दवा-दारु, किसी को कानो कान ख़बर ही न होगी।

राकेश—नहीं माँ, मैं जा रहा हूँ। सैकिंड हैंड बीबी मैं न लूँगा। लो मैं चला।

माँ—राकेश ! राकेश बेटा !! (राकेश चला जाता है) क्या कुछ न कर बैठे ! मेरे तो भाग्य ही फूट गए। राकेश !!! (युवती का सिर जमीन पर रखकर चली जाती है। दूसरे दरवाज़े से राकेश की बहन प्रवेश करती है)

बहन—भैया ! माँ !! हाय हाय यह क्या ? भाभी पड़ी है। अरे कोई है, देखो तो। (भाभी का मुँह देखते हुए) यह क्या ? बेहोशी हो गई है, अरे कोई है ? न जाने सब कहाँ जा मरे हैं। पानी लाऊँ। (जल्दी से एक गिलास पानी लाकर उसके मुँह पर छींटे मारती है। युवती को होश आती है।) भाभी ओ भाभी !

युवती—मैं—मैं कहाँ हूँ ? (फिर लुढ़कने लगती है)

बहन—भाभी—भाभी क्या हुआ तुम्हें ? भैया कहाँ है ? भैया ! भैया !! क्यों क्या हुआ था ?

युवती—वह—वह अभी यहाँ थे।

बहन—हाय हाय, यह क्या ? खून बह रहा है। उठो मेरी रानी उठो, पलंग पर लेट रहो। मैं आयडोन लगाए देती हूँ। पहले दिन बहु को—कोई क्या कहेगा ?

युवती—कोई क्या कहेगा ?—हाँ कोई क्या कहेगा ? नहीं नहीं बहन।

बहन—तुम्हें हो क्या गया है। मनुआ ओ मनुआ, भैया कहाँ हैं ? अरे बाबू जी को तो भेज जरा। (माँ प्रवेश करती है)

माँ—हाय हाय मेरी एक नहीं सुनी। चला गया। अरे कोई है। जा, जा तू भेज दीपू को स्टेशन और खुद जा बस के अड्डे पर हाय हाय कहीं कुछ कर ही न बैठे।

बहन—क्या कहती हो माँ ?

माँ—क्या कहती हो। अरे जाओ कोई मेरे राकेश के पीछे कलमुँही घर में क्या आई है, मेरे बेटे को खा लिया है। अरी तू पहले बता देती तेरे पेट में किसी यार की सोगात है। तेरे काले लच्छनों का फल भरा पड़ा है। तू मर क्यों न गई ! हाय हाय कोई क्या कहेगा। (दोनों हाथों से अपना और बहु का सिर पीटने लगती है) तू मर जाती तो बेहतर था ! जा जा अपने बाप के घर बैठ—अड्डा खोल ले ! डायन कहीं की। हाय हाय कोई क्या कहेगा !

युवती—हाँ कोई क्या कहेगा ? (बेहोश हो जाती है।)

माँ—यह तिरिया चरित्र किसी और को दिखाना।

बहन—माँ ! माँ !!

माँ—अभी तू यहीं खड़ी है। जा देख राकेश कहाँ है। दीपू को भेजा ? मनुआ कहाँ है ? मनुआ ! ओ मनुआ !! (दीपक की पत्नी राकेश की भौजाई प्रवेश करती है)

भौजाई—माँ जी ! यह क्या ? बहु को क्या हुआ ? हाय हाय लहू बह रहा है, गिर गई थी क्या ? बेहोश हो गई है। पानी लाओ, ओ मनुआ। वहाँ से पानी लाओ !

माँ—पड़ी रहने दो ! मेरे घर में आग लगा दी—कल को मुँह कैसे दिखाऊँगी ?

बहन—माँ, क्या कहती हो ?

माँ—जा तू बेटी, दीपू को भेज ज़रा स्टेशन चला जाए और तू, तू जा बस के अड्डे पर।

भौजाई—छोटे लाला कहाँ हैं ?

माँ—अरी सुना नहीं ? कहीं चला गया है, उसे ही देखने को तो कह रही हूँ। वह कुछ कर ही न बैठे। हाय हाय मैं अब क्या करूँगी। कोई क्या कहेगा !!

(तीनों बाहर चली जाती हैं।)

× × ×

बेला—क्यों क्या बात थी ?

भौजाई—कुछ नहीं ?

कुसुम—चीख पुकार तो इतनी हो रही थी कि—

बेला— } सास तुम्हारी क्या चिल्ला रही थी ?
कुसुम— } कोई झगड़ा हो गया क्या ?

भौजाई—ओ वैसा कुछ नहीं।

बेला—बनती हो, आज न सही, कल मालूम पड़ जाएगा। जीजा जी और मनुआ को कहाँ भिजवाया है? देवर बाबू, क्या?—बहु पसंद नहीं आई क्या? देखने में नैन नक्श तो अच्छे हैं।

कुसुम—बात करने की भी मन्दी नहीं—पर

बेला—पर सोहागन सो जो पिया मन भाए।

भौजाई—यह तो है री।

बेला—आखिर कहो भी तो, बात क्या है? नैन नक्श अच्छे हैं, बोलने की मंदी नहीं, दहेज खूब भरपूर लाई है तो दोष क्या है? आखिर देवर तुम्हारे को पसंद क्यों नहीं आई? कोई पुरानी दोस्ती? किस्सा? किसी की कली खुली है क्या?

भौजाई—बस कुछ ऐसा ही समझो।

कुसुम—साफ़-साफ़ भी तो कहो।

भौजाई—अब तुमसे क्या छिपाऊँगी बहन, उसके पेट में बच्चा है। देवर ठहरे डाक्टर, रात में भाँप लिया होगा।

कुसुम—जभी!

बेला—और देवर बाबू जभी घर से भाग निकले हैं।

कुसुम—जीजा जी को स्टेशन इसी लिए भेजा जा रहा है।

भौजाई—हाय हाय, मैं तो भूल ही गई।

बेला—पर देवर तुम्हारा डाक्टर है, कोई दवा दारू दे सकता था, हुआ क्या, किसी को कानो-कान खबर ही न होती।

कुसुम—हाँ री, उसने ऐसा क्यों न किया? भाग्य में जो

थी, वह तो मिल ही गई थी, फिर इतना शोर मचाने से क्या मिलता ?

भौजाई—पर बीबी तो सैकिंड हैंड ही होती और फिर माँ ने लाला की मर्जी के खिलाफ़ शादी की है, माँ को वह जताना चाहता था कि उसकी पसंद की हुई लड़की ऐसी है।

बेला—तुम्हारी देवरानी को भी तो पता चल गया होगा ?

भौजाई—वह तो बेहोश पड़ी है बेचारी।

कुसुम—बेहोश पड़ी है !

बेला—उसे तो कुछ नहीं कहा। चुपचुपीते भाग गया था—

भौजाई—मुझे नहीं मालूम। वह बेहोश पड़ी है, सिर से खून बह रहा है।

बेला—सुना कुसुम, यह हैं लच्छन आजकल के छोकरे-छोकरियों के।

(बाहर से आवाज़ आती है—बहु ! ओ बहु !)

भौजाई—जी आई ! फिर क्या हो गया। आती हूँ अभी, बैठो।

× × ×

लीला—इतनी तेजी से कहाँ भागे जा रहे हो ?

राकेश—ओह लीला—हाँ, कुछ नहीं।

लीला—कुछ नहीं ? कुछ नहीं क्या ? कुछ तो है ! इतने घबड़ाए हुए क्यों हो ?

राकेश—कुछ नहीं लीला, मुझे जाने दो।

लीला—जाने दो ! कहाँ ? मैं तुम्हारे यहाँ जा रही हूँ, तुम

कहते हो जाने दो। आखिर कुछ साफ़ साफ़ कहो, इतने खोए हुए से—

राकेश—हाँ लीला, मेरी तबीयत ठीक नहीं।

लीला—तबीयत ठीक नहीं तो घर चलकर आराम से पड़ रहो, भागे कहाँ जाते हो? अभी कल मियाँ साहब का ब्याह हुआ है, आज तबीयत ठीक नहीं। सुनूँ तो भला, क्या खराबी है?

राकेश—लीला, मुझ से ज्यादा कुछ न कहो, मेरा सिर घूम रहा है।

लीला—घूम रहा है या फिर गया है?

राकेश—मुझे तंग मत करो लीला, मैं कहीं कुछ कर ही न बैठूँ।

लीला—सिर घूम रहा है, तबीयत ठीक नहीं, तुम भागे जाते हो, आखिर कुछ मतलब, चलो, कुछ दवा खाओ—

राकेश—नहीं लीला, मेरी मर्ज़ लाइलाज है। यह रोग ठीक नहीं होने का।

लीला—ठीक नहीं होने का! मैं पहेलियाँ नहीं बूझ सकती। साफ़-साफ़ कहो क्या बात है। चलो घर चलो, यहाँ रास्ते में कोई क्या कहेगा?

राकेश—नहीं लीला, मैं अब उस घर नहीं जाऊँगा। हरगिज़ हरगिज़ नहीं जाऊँगा।

लीला—घर नहीं जाऊँगा और कल जो बहु लाए हो? क्यों अभी से खटपट शुरू हो गई क्या? आखिर कहो भी तो कुछ साफ़ साफ़।

राकेश—हाँ लीला, मैं वहाँ नहीं जा सकता। अब कहीं ऐसी जगह जाऊँगा जहाँ मेरा अपना कोई न हो-जहाँ-जहाँ—

लीला—पागल न बनो। चलो घर चलो, राह चलते लोग क्या कहेंगे ?

राकेश—नहीं लीला, यह नहीं हो सकता। मैं वहाँ न जाऊँगा। मैं वह घर हमेशा के लिए छोड़ आया हूँ।

लीला—ऐसी सुन्दर बहू है, ऐसा मीठा बोलती है, इतना कुछ लाई है, आख़िर

राकेश—हाँ इतना कुछ लाई है—

लीला—राकेश !

राकेश—हाँ लीला-बहुत लाई है, एक तीनमाहा बच्चा भी।

लीला—राकेश।

राकेश—हाँ लीला-अब कहो क्या कहती हो ?

लीला—घर चलो।

राकेश—अब भी घर चलो ?

लीला—हाँ, अब भी घर चलो।

राकेश—यह नहीं हो सकता। हरगिज़ हरगिज़ नहीं हो सकता।

लीला—क्यों नहीं हो सकता। राकेश, याद करो, तुम्हारे दिल से वह बात बिलकुल ही निकल गई है क्या ?

राकेश—वह बात और थी लीला।

लीला—और क्यों ? मेरा भी तो आख़िर किसी तुम्हारे जैसे नौजवान के साथ ब्याह होना ही था। फिर—

राकेश—पर व्याह से पहले मैंने तुम्हारा एबारशन कर दिया था।

लीला—उस से क्या फर्क पड़ता है। तुम डाक्टर थे, मुझे कुछ खिला दिया, वह बेचारी कुछ खाती भी तो कहाँ से ?

राकेश—तो किए का फल भोगे। मैं कल दुनियाँ को कैसे मुँह दिखाऊँगा।

लीला—जैसे मैं दिखाती। जैसे मर्द दिखाते हैं। दुनियाँ में कोई ऐसा रोग नहीं जिसका इलाज नहीं हो सकता।

राकेश—पर नहीं लीला।

लीला—नहीं कैसे। चलो घर चलो।

राकेश—मैं अब घर नहीं जा सकता लीला। मैं अब कहीं ऐसी जगह जाना चाहता हूं जहाँ मुझे कोई न जानता हो, जहाँ मैं अकेला हूँ।

लीला—अकेले जीवन नहीं कटता। किसी न किसी साथी की जरूरत पड़ती है। उसे ले जाओ। दोनों अनजान होंगे। साल दो साल वहाँ रहना, घर बनाना फिर यहाँ लौट आना, चाहे न भी आना किसी को शक भी न होगा। यूँ उसे छोड़ कर भागोगे। कल सारी दुनियाँ जान जाएगी। तुम्हारा नाम डूबेगा, तुम्हारे खानदान का नाम डूबेगा, उसके खानदान का भी। दर-दर ठोकरें खाएगी कोई पूछेगा नहीं, मुँह में लोग थूकेंगे, तुम उसे उभार लो, बचा लो, यही तुम्हारे लिए उचित है। दो साल हनीमून ही सही। तुम वहीं कहीं प्रेक्टिस भी शुरू कर सकते हो। चलो, मेरा कहना मान लो। घर चलो (उसकी बाँह में हाथ डाल कर जबरदस्ती उसे घर की ओर ले जाती है,

वह भी बच्चे की तरह उसके साथ चलने लगता है) कोई क्या कहेगा। राकेश ऐसा था वैसा था, राकेश का बाप ऐसा था, राकेश की—तुम्हें दो खानदानों की इज़्ज़त बचा लेना चाहिए, कोई क्या कहेगा—

× × ×

राकेश ओंडे में बैठा था। हाथ में अखबार थी, उँगली में सिगरेट और सामने तिपाई पर चाए। चाए ठण्डी हो रही थी, सिगरेट की राख जम रही थी और उसकी अख़बार के पन्नों पर यह कुछ दृश्य बनते मिटते जा रहे थे। खोया हुआ सा वह बैठा था। भाभी ने आकर पूछा, क्यों छोटे लाला, अकेले बैठे हो। वह कहाँ हैं ? अरे आज भी बैठे अकेले चाए पी रहे हो, क्यों ? कोई क्या कहेगा।

'हाँ उन्हीं की राह देख रहा हूँ, ज़रा भेज दो' राकेश ने कहा।

'क्यों लाला, बहू-बहू'

'हाँ बहू बहू पसंद है। और हाँ भाभी हमारे बाहर जाने की तैयारी कब करोगी ?'

'कर दूँगी हनीमून की उतावली है क्या ?'

'नहीं, हाँ, उसे भेजदो ज़रा चाय ठण्डी हुई जा रही है।'

तस्वीर !

सतीश महाशय अपने १६×१६ नाप के कमरे में चहलकदमी कर रहे थे। शायद मैं उन्हें इस हालत में देख न पाता, यदि किवाड़ खटखटा कर अन्दर घुसता, पर कुछ ऐसा ही है कि मैं किवाड़ खटखटाये बिना ही उनके स्टुडियो-घर में घुस जाता हूँ। मुझे इस बात के लिए असभ्य कहा जा सकता है, बेशक, पर करूँ क्या? सोचता हूँ इतनी मुद्दत, यह लम्बे बीस वर्ष उसके साथ रहकर मुझे यह अधिकार अपने आप ही मिल गया है। किसी ने दिया नहीं, किसी ने लिया नहीं; बस मिल गया है। मैंने उसे बहुत रूपों में देखा है, मॉडल का एंगिल लेते समय, पोज़ बनाते समय, कैनवस में जीवन फूँक देनेवाले रंग भरते समय...परन्तु आज बात कुछ विशेष लगती थी इसलिए मैंने उसे बुलाया नहीं—देखता रहा। दो बड़े-बड़े हरे रंग के नोट—कहने का अर्थ है सौ-सौ रुपये के—उसकी उँगलियों में चुरमुर कर रहे थे और वह बार-बार उनकी ओर देख रहा था और बार-बार उस फटे कैनवस की ओर। नोटों पर से उठकर, छत की कड़ियाँ गिनती हुई उसकी

दृष्टि कैनवस पर पड़ती और उसी तरह अपना मार्ग बना कर वापिस नोटों पर।

पाँच-एक मिनट चुप रह, थोड़ा खाँसकर मैंने पूछा—क्यों सतीश बाबू, आखिर माजरा क्या है ?

'माजरा! हूँ!' अस्पष्ट-सी भाषा में कह उसने फिर चहलक़दमी जारी रखी।

'सतीश, आखिर बात क्या है; बोलो भी तो। बावलों की तरह...!' उसके रास्ते में खड़े हो, मैंने प्रश्न दोहराया।

'हाँ हाँ बावला हूँ! और कहो!' उसने नोट मेरे आगे करते हुए कहा।

कह चुका हूँ, सतीश को मैंने आज तक बहुत रूपों में देखा है—नाचते-गाते, हँसते-रोते, चित्रकारी करते और चुपचाप, यूँही बैठे, पर आज वह कुछ अजीब गोरखधंधा बन रहा था।

तिपाई पर से चाय का ख़ाली ट्रे हटाते हुए मैंने पूछा—आखिर बात क्या है? यह फटा हुआ कैनवस, यह नोट, यह तुम...'

'बात कुछ नहीं। हाँ एक काम कर सकते हो? टोपीवाला के यहाँ जा सकते हो? उन्हीं की,' फटे हुए कैनवस की ओर संकेत करते हुए सतीश कहने लगा—लड़की हैं। समझे! बोलो कर सकते हो?'

'हाँ-हाँ लड़की तो हैं पर कर क्या सकता हूँ?'

'अरे यह नोट वही फेंक गई हैं। उन्हें वापिस दे आओ। कहना मैंने दिये हैं।'

'पर वह ख़ुद ही तो दे गई हैं, ले लो।'

'सतीश किसी के टुकड़ों पर पलनेवाला नहीं है। वह धन के गर्व में फेंक गई हैं। समझती होंगी, मैं बेचारा ग़रीब चित्रकार इतने रंग जो मिलाता रहा। कहना उन्हें; सतीश भिखारी नहीं है, वह लूला-लँगड़ा नहीं। कमा सकता है, खा सकता है। बहुत धन है तो किसी धर्मकाज में लगा देवें—और नहीं तो कोई बढ़िया-सी साड़ी ही ख़रीद लेवें। मैं...मैं...' इस से आगे वह जो कहना चाहता था वह कह नहीं सका। उसे शब्द नहीं मिले।

एकटक मैं उसकी ओर देखता रहा। अभी तक मुझे कुछ समझ नहीं आया था।

'क्या देखते हो? क्या है मेरे मुँह पर? कहो 'हाँ' या 'न'।'

'अरे कर सकता हूँ, पर बताओ तो माजरा क्या है?'

'माजरा क्या है? फिर वही। कल्पित कहानियाँ लिख सकते हो, यथार्थ को देखकर नहीं समझ सकते। जी! कहानी लेखक हैं, हमारा यहाँ नाम है, वहाँ नाम है!'

मेरे लिए और कहना-पूछना बाकी न रह गया। मैंने कहा—लाओ, दे आता हूँ। कोई पत्र भी साथ दोगे? मुझे तो वे जानती नहीं। क्या कहूँगा?'

'कहना मैंने दिये हैं! मैं लेना नहीं चाहता। मैं उन्हें सन्तुष्ट नहीं कर सका, मेरा क्या हक़ है? मैंने उनकी आशाएँ—बस, बस यही।' उसने नोट मेरी हथेली पर रख दिये और धड़ाम से कौच में गिर पड़ा।

'अच्छा चाय न पिलाओगे? बम्बई से चलकर तुम्हारे पास कान्देविली में आया हूँ, वैसे ही लौट जाऊँगा?' मैंने नोट

तह करके जेब में रख लिये और प्रसंग बदलने की खातिर कहा।

'ओह' यह तो मैं भूल ही गया था। क्षमा करना अविनाश भाई, बहुत स्वार्थी हूँ न मैं। अभी लाता हूँ!'

इतना कहकर वह बाहर चला गया और मैं बैठा रहा। नोटों की सोचता, फटे हुए कैनवस की ओर देखता, छत की कड़ियाँ गिनता और होटों से सीटी बजाता।

जब चाय की ट्रे लेकर सतीश अन्दर आया तो वह बहुत कुछ बदला हुआ था। बाल बेशक उसी तरह उलझे थे, कुर्ते के बटन भी उसी तरह खुल रहे थे परन्तु वह बहुत कुछ बदला हुआ था। चाय का सैट मेज़ पर रखते हुए वह बोला— देखी हैं इसकी आँखें? कैसी है?

'अच्छी हैं, बातें करती हैं, इनमें जीवन हैं, रंग है।' कैनवस की ओर देखकर मैंने कहा।

'और इन्होंने ही सब काम बिगाड़ दिया। ह: ह:। समझे, इन्होंने ही। उन्हें ये पसन्द नहीं आईं। कहने लगीं मेरी आँखें ऐसी नहीं हैं। कि जो आँखें मैंने बनाई हैं वह 'इनवाईटिंग' हैं और उनकी...ह: ह: 'देवी हैं देवी!'

मूड बदला देखकर मैंने कहा—अरे सुनाओ तो, क़िस्सा क्या है। इधर महीने भर से आ नहीं सका। कैसे गुज़रे दिन?'

'किस्सा क्या है? एक दिन बैठा था कि दरवाज़े पर एक कार आकर रुकी और रज्जू यह कार्ड लेकर मेरे पास आया' उसने ड्राअर में से कार्ड निकालते हुए कहा—'मिस एस० टोपीवाला बी० ए०' कुछ समझ में नहीं आया। कौन है ऐसा

मेरे यहाँ आनेवाला। नौकर से कहा, पूछो मुझे ही मिलना है ? वह गया और क्षण भर में यह दूसरा कार्ड लेकर आया।' उसने दूसरा कार्ड निकाला। इसकी पीठ पर लिखा था—'महाशय मुझे एक चित्र के विषय में आप से बातचीत करनी है। समय लेकर नहीं आई। क्षमा। फिर आऊँगी।' पर इससे पहले कि कार चल पड़े मैं स्वयं बाहर जाकर उन्हें अन्दर लिवा लाया। कहा कि उनके दर्शन पाकर मैं बहुत कृतार्थ हुआ हूँ। उन्होंने कहा, बहुत मुद्दत से उनका मुझ से मिलने का विचार था पर मिल न सकी थीं। आज अवसर पाकर चली आई थीं। असमय कष्ट देने के लिए उन्होंने क्षमा माँगी। मैंने कहा—यह 'तो आपकी दया है। आप जैसे लोग...'

'तो यह उन्हीं का चित्र है ?' मैंने बात काटते हुए पूछा।

'अरे सुनो भी। अपनी चलाते जाओगे! हाँ तो मैंने कहा—कहिये, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ ?'

बोलीं—वैसे ही। आपको समय हो तो एक सिटिंग ले सकेंगे क्या ?'

मैंने कहा—जी यही तो काम है मेरा। कौन बैठना चाहता है ?'

वह बोलीं—मैं ही तो। कहिये, समय हो तो...'

मैंने कहा—समय ही समय है। आप जब चाहें आ सकती हैं। मेरी तरफ से आज ही शुरू कर सकती हैं।

'यह तो आपकी कृपा है। तो फिर कल किस समय आऊँ ? कौन समय आपको ठीक रहेगा ?'

मैंने कहा—मैं तो दिन भर यहीं रहता हूँ। आपको जिस

समय सुभीता हो, आप आ सकती हैं। हाँ इतना है कि एक समय, जो भी आप चाहें निश्चित कर दें ?

वह कुछ सोचकर बोली—सुबह तो कालिज होता है। दिन का टाईम—नहीं, पर उस समय क्या कहूँ मिस्टर सतीश, दिन में सोने की बुरी आदत है; न सोऊँ तो मन नहीं लगता। हाँ शाम को, पाँच-छः बजे आप कहें तो आ जाऊँ ?'

मैंने कहा—सो ठीक है। तो आप कल से आ जाइयेगा।

'धन्यवाद। पर कौन-सा ड्रैस ठीक रहेगा ?' उन्होंने उठते हुए कहा।

'जो भी आपको पसन्द हो, पहन सकती हैं 'मैंने कहा।

'तो भी चित्रकार ही तो ठीक कह सकता है कि कौन-सी ' ड्रैस ठीक खिलेगी' कुछ क्लश करते हुए उन्होंने पूछा।

मैंने उनकी ओर, सिर से पैर तक, देखकर कहा—आप पर हर एक ड्रैस ठीक सजेगी, जिसमें चाहे आ जायँ।'

'तो यह बात है। क्यों सतीश भाई, खूब 'सिटिंग' ली ! मैंने उसके कंधे पर अपनी हथेली ठपकाते हुए कहा।

तो जनाब, दूसरे दिन से 'सिटिंग' शुरू हुई। वे ठीक छः बजे पहुँच गई। अकेली ही थीं—कार में। मैंने कहा, आप समय पर आ गई। मैं आपकी राह ही देख रहा था।

वह बोलीं—ड्रैस खरीदने में जरा देर लग गई, नहीं तो...

'तो आप दूसरी ड्रैस में बैठना चाहती हैं ?' मैंने पूछा और वे जो साड़ी पहने थी काफ़ी बढ़िया थी।

बोलीं हाँ, कार में धरी है। ले आती हूँ। यह साड़ियाँ मुझे पसन्द नहीं। 'तो जनाब उन्होंने यह ड्रैस पसन्द की है। देखते

हो ?' सतीश ने कैनवस की ओर देखते हुए कहा—पीले रंग की आधी चोली, लाल लहँगा, सिर पर गगरी, बिखरे बाल, खुली हुई वेणी ? खोई हुई चुनरी—देखा ?

'यही समझो। पहले दिन कोई दो घण्टे लगे। मैंने कहा यदि आप थक जाएँ तो बीच में थोड़ा विश्राम ले सकती हैं। ऐसे ही ठीक है; विश्राम की कोई आवश्यकता नहीं अभी तो जवान...' और सहसा चौंक पड़ी। फिर कहने लगीं—देखूँ क्या बना है।

मैंने कहा—मिस...मिस...

बोलीं सोफिया ही कहिये। सब लोग मुझे इसी नाम से पुकारते हैं—सोफी—आप भी...

'हाँ तो, मिस सोफ़िया, चित्र आप पहले दस दिन नहीं देख सकेंगी। आपको देखना ही न चाहिए। चित्रकला यह आज्ञा नहीं देती।'

बोलीं—मैंने तो...खैर दस दिन बाद ही सही। मुझे आपकी कला पर विश्वास है। सो नित्य ही वह आतीं और नित्य ही मैं सिट्टिंग लेता। कभी-कभी बातें करतीं। एक बार पूछ बैठीं—आपके विचार में प्रेम क्या है ? क्या यह मनुष्य को संसार से ऊपर उठा सकता है, क्या दो मनुष्यों को एक बना सकता है ?'

मैंने कहा—प्रेम प्रेम है, इतना मैं जानता हूँ और फिर मैं तो चित्रकार हूँ।

बोलीं—चित्रकार प्रेमी नहीं होते क्या ?

मैंने कहा—हो सकते हैं।

कहने लगीं—चित्रकार कला से प्रेम करता है। आप ही

देखिये न, मुझे तो आप में और कला में कोई अन्तर नहीं लगता। आपने उसे प्रेम किया है, तभी तो।

मैंने कहा—हो सकता है। पर प्रेम के लिए तप और साधना की आवश्यकता है।

कहने लगीं—हाँ सो तो है ही।

इसी तरह बातें होतीं। रोज ही। आज ग्यारहवाँ दिन था। सिटिंग के बाद पूछने लगीं—आज तो देख सकती हूँ न ?

मैंने ब्रश चलाते हुए कहा—हाँ, समय तो अभी और लगेगा पर आप देख सकती हैं। और फिर यह सब कुछ हो गया। चित्र देखते ही उनकी मुस्कान न जाने कहाँ उड़ गई। सकते में आ गईं। आखिर मुँह मोड़ते हुए बोलीं—क्या यही मैं हूँ ? क्या मेरी आँखें इसी तरह हैं ? मैंने तो सोचा था......

मैंने कहा—कहिये, आपने क्या सोचा था ?

बोलीं—मैं तो समझी थी तुम कुछ और ही खींचोगे। मुझे नहीं, मेरे हृदय को। क्या यही सब कुछ तुम्हें वहाँ दिखाई दिया ?

मैंने कहा—मिस सोफ़िया मैंने जो कुछ देखा है वह यही है। बहुत मेहनत के बाद—'

बात काटते हुए वे बोलीं—आपने यही सोचा कि मैं कपटी हूँ। धोखेबाज़ हूँ। इन आँखों में आपको क्या 'ट्रू लव' दिखाई देता है ? तुमने तो वासनाको...बहुत नाम सुना था तुम्हारा मिस्टर सतीश और वह धड़ाम से कौच में गिर पड़ीं।

मैंने कहा—कहिये तो, आपने क्या चाहा था ?

कहने लगीं—मैंने समझा था शायद तुम मेरे हृदय को पढ़ सको और मेरे हृदय मन्दिर के देवता की मूर्ति...'

मैंने कहा—हाँ, मिस सोफिया, मैंने जो देखा है वही बना दिया है। आपके हृदय में चाह थी। मैंने वही चाह दिखा दी, इन आँखों में। आपने सोचा था कि मैं...खैर। लेकिन जहाँ चाह है वहाँ यही कुछ है; जहाँ त्याग है। वहाँ...वहाँ...'

'तो आप मेरा समय व्यर्थ नष्ट करते रहे। अच्छा। पर आपने रंग तो खर्च किये हैं; यह लीजिये अपना दाम ! उसने नोट मेज पर रख दिये और कैनवस में 'कट्टर' चुभो दिया। बस। समझे, मैं जैसे भिखारी हूँ। रुपये—रुपये—'

'पर ठीक तो है, सतीश, तुमने काम किया है, समय गँवाया है, तुम्हें रुपये ले लेने चाहिएँ।' मैंने कहा।

सतीश फिर गुस्से में आ गया। फिर वही भूत उस पर सवार होता हुआ दिखाई दिया बोला—जा सकते हो तो अभी जाओ नहीं लाओ, मैं स्वयं ही कर लूँगा।

'सुनो तो।' मैंने कहा।

'मैं कुछ सुनना नहीं चाहता। वह चाहती हैं कि मैं उनकी जगह उनके प्रेमी का चित्र खड़ा कर देता जैसे सिनेमा में राधा में कृष्ण दिखाई देते हैं, कृष्ण में राधा ! हूँ चली हैं प्रेम करने फिर कहती हैं 'मैं इनवाइटिंग हूँ !' 'इनवाइटिंग' नहीं तो और ! फिर उसी तरह वह कमरे में चक्कर काटने लगा—प्रेम का नाम बदनाम कर दिया है। प्रेम-प्रेम ! दिल के सौदे जैसे इसी तरह होते हैं—हूँ। जाओगे या नहीं ? नहीं, लाओ नोट मुझे दे दो। मैं जला दूँगा। फूँक दूँगा, टुकड़ों पर पलना सतीश ने नहीं सीखा।'

मैंने सोचा, जोश में है, ठण्ढा होने पर समझ जाएगा। इस समय दिये तो वह सचमुच ही जला देगा, वह ऐसा ही है।

इसीलिए कहा—हाँ हाँ, तुम्हारा इतना काम न करूँगा। आजकल छोकरे-छोकरियाँ—क्या पूछते हो सतीश—अभी दे के घर जाऊँगा।

वह मुझे स्टेशन तक छोड़ने आया और जब गाड़ी चल रही थी तब भी वह कह रहा था आज ही दे कर जाना, समझे...!

× × ×

अब इस बात को पाँच दिन हो चुके हैं। रुपये मेरी जेब में हैं। अभी तक निश्चय नहीं कर सका क्या करूँ? सतीश को दे दूँ तो वह निश्चय है कि जला देगा और मिस सोफिया के पास जाने की मेरी हिम्मत नहीं। सोचता हूँ सतीश ने काम किया है, वह पैसे क्यों न ले, पर सोफिया भी तो सन्तुष्ट नहीं हुई! और वह तस्वीर क्षणिक आँखों के सामने आ जाती है।

जुलाई १९४१

मूक साधना

राय महाशय अपनी लायब्रेरी में बैठे थे। अपनी पुरानी आराम-कुर्सी पर—हाँ उसी कुर्सी पर जिसका कि आश्रय इन्होंने कई दुखद और सूनी घड़ियों में लिया था। दिन-भर की मगजपच्ची के पश्चात् जिसने उन्हें थोड़ा आराम दिया था, पेचवान मुँह में था और दो चार हाथ की दूरी पर विलायती तम्बाकू और इलायचियों से भरा हुक्का। किताबों के तीन-चार ढेर लगे थे, एक में सौ दो सौ, एक में तीस पैंतीस एक में पाँच सात ही। सुखदास आलमारी से किताबें उठाकर उन्हें देता, वे खोलते, देखते, नाम पढ़ते, दो-चार पन्ने उलटते और फिर एक ढेर की ओर फेंक देते। किसी-किसी पुस्तक को उस बड़े ढेर में फेंकते समय एक छोटी-सी आह ले लेते या कोई नुक्ताचीनी कर देते। "फाइन बुक, बीस में आयी थी।"

सुखदास कहता, "यह सब दे दोगे बाबूजी ? मुफ्त में ही ?"

"तो इन्हें रखकर क्या करना है सुखदास ! मैंने पढ़ लीं। जो लाभ उठाना था उठा लिया, अब बहुतेरों के काम आयेंगी।"

सुखदास चुप हो जाता। सोचता कि दो अक्षर पढ़ा होता तो वह भी दो-एक माँग लेता, और नहीं तो बच्चे बड़े होकर पढ़ते। किस्मत!

बाहर खूब जोर से हवा चल रही थी—चीड़ के वृक्षों से क्रीड़ा करती, आँखमिचौनी खेलती, सर-सर करती भागती हुई पकड़ाई न देती हुई, अपनी मस्ती में आजाद कुछ गाती हुई, किलकारियाँ लगाती हुई, सर्दी बढ़ती जा रही थी, वैसे ही जैसे प्रातःकाल पहाड़ियों पर धूप कदम-कदम चढ़ते दिखायी देती है। राय महाशय कम्बल ओढ़े बैठे थे पर जैसे-जैसे सर्दी बढ़ रही थी वे अंगीठी की आवश्यकता अनुभव कर रहे थे। सुखदास अंगीठी ले आया। धधकते हुए लाल-लाल अंगारे; स्वयं जल कर दूसरों को सुख पहुँचानेवाले।

आज इस काम को समाप्त करके ही उठने का विचार था। कई दिनों से लिटरेरी यूनियन वाले कह रहे थे। कितने ही पत्र उन्होंने लिखे थे जिनका कोई उत्तर शायद ही राय ने दिया हो। हाँ एक बार, जब उनके तकाजे बहुत बढ़ चले थे तो उन्होंने लिखा था—"ये आप ही की होंगी। मुझे क्या करना है? पर हाँ इतनी बात जरूर है कि मेरे आँख मींच लेने के बाद ही। कितने यत्न और तपस्या से मैंने इकट्ठी की हैं, यह आप नहीं जानते। दुनिया में मेरा और कौन है? यही पुस्तकें तो हैं फिर इनसे बिछुड़ना, अपने कलेजे के टुकड़े—! ओह मैं बहुत आगे बढ़ा जा रहा हूँ। खैर, मेरा आपसे वायदा रहा, मैं सब आपके नाम लिख दूँगा।" पर अब संघ के मंत्री स्वयं आ गये थे; मैदान से चल कर इतनी ऊँचाई पर केवल इसी बात

के लिए, तो वे 'न' नहीं कर सके। एक शर्त साथ लगा दी कि कुछ पुस्तकें वे अपने पास रख लेंगे। अतएव अब वे इसी चुनाव में लगे थे कि कौन-कौन पुस्तकें रोक लें।

सुखदास ने निबन्धों वाली आलमारी खत्म की, आगे 'स्पेशल' थी। राय महाशय ने कहा, "सुखदास रहने दो इसे छोड़ दो।" पर फिर थोड़ी देर रुक कर कहने लगे, "अच्छा खोलो तो, इसे ही। आज देख लें इसमें क्या-क्या है। एक तरफ करदें।"

सुखदास ने आलमारी खोली और लगा पुस्तकें बढ़ाने। पर इस बार राय महाशय हर एक पुस्तक को बड़े ध्यान से देखते ही रहते। न जाने विचार कहाँ पहुँचते। सुखदास अगली पुस्तक हाथ में पकड़े खड़ा रहता। अपने स्वामी का मुँह ताकता, जैसे वफादार कुत्ता स्वयं कुछ न पा रोटी खाते मालिक के मुँह की ओर। और वे सोचते यह पुस्तक स्पेशल में कैसे आ गयी। क्या सम्बन्ध है, इसका उसके जीवन से ?

अंधकार बढ़ रहा था। सुखदास हाँडीवाला बड़ा 'डिटमार' लैम्प ले आया, "छोड़ो बाबू कल देख लेना। सर्दी बढ़ रही है, खाँसी का दौरा हो जायगा।"

"सुखदास खत्म कर लेने दो। कौन रोज-रोज का झगड़ा।"

सुखदास कुछ न कह सका। चुपचाप लाल, नीली, सुनहली जिल्दोंवाली पुस्तकें आगे करता गया और राय किसी को इधर, किसी को उधर फेंकते गये।

फिर एक पुस्तक आयी। सुनहली, कोरी-सी ही। "ऐण्टिक

पेपर'' पर, ऊपर मोमी कागज़। सुखदास ने देख कर कहा, "बाबू क्या बिन-पढ़ी पुस्तकें भी दे दोगे? नयी तो दीखती हैं, किसी ने खोली भी न होगी!"

राय महाशय ने पुस्तक देखी, दृष्टि मानों उसी में ही गड़ गयी। पेचवान मुँह में ही रह गया। गुमसुम! हाँ एक छोटी-सी 'हुँ' हुई। कुछ देर पुस्तक वैसी ही बन्द की बन्द हाथ में लिये बैठे रहे। फिर जिल्द खोली, सुनहरे अक्षरों में लिखा था—

"अपनी लीला को ही—राय"

पेचवान मुँह से गिर पड़ा; हुक्का ठण्ठा हो गया पर राय की दृष्टि ऊपर नहीं उठी। कितनी सर्दी बढ़ गयी इसका उन्हें कुछ ख्याल ही न था।

"लीला! अपनी!! यौवन!!! उफ!"

"हूँ 'अपना'—क्या भूल है उन उमंग भरे दिनों की! कौन है इस संसार में अपना। न जीवन अपना है न मृत्यु! जग, ऊपर नीले-नीले आकाश की ओर देख कर कह देता है, "क्या बातें करते हैं आपस में, क्या प्रेम का अपना ही संसार बना लिया है इन्होंने!" पर यह तो वही कह सकते हैं न कि कितने मीलों या कोसों की जुदाई का अनुभव करनेवाले। अपना! हूँ!! स्वयं कोई अपना नहीं फिर......।"

कौन कह सकता है कि उनकी दृष्टि पुस्तक के पन्नों को भेदती हुई कहाँ पहुँच चुकी थी। न जाने धुँधले समय के किस अँधेरे कोने की वे उस समय झाँकी ले रहे थे। मानस-पटल पर एक नाटक-सा खेला जा रहा था।

कोई पैंतीस वर्ष पूर्व—

सुधान राय जवान था, मद्‌भरी जवानी। पट्ठा। ऐंठी हुई मूछें और साफ दाढ़ी। पतले किनारे की धोती और बाइना सिल्क का कुरता।

उन दिनों क्रिसमस ही तो था, जब मेमें कितनी दूर-दूर देशों से अपने बन्धु-बान्धवों को प्रेमोपहार भेजती हैं। मसीह का प्रत्येक अनुयायी अपनी सामर्थ्य के अनुसार खुशी मनाता है, घर में चिराग जलाता है, यह दूसरी बात है कोई घी के, कोई तेल के और कोई पानी के ही। हाँ, वही दिन तो थे! वह भी अपने भाई-बान्धवों को मिलने घर आया था। तब वह युनिवर्सिटी कौलेज में एम. ए. में पढ़ता था और साथ-साथ आई. सी. एस. की तैयारी करता था। उसे ओहदेदार बनने का शौक था, अखबारों में अपना नाम देखने की चाह थी—उस जमाने में जब दिन उमंग-भरे थे। साथ ही दो-चार पुस्तकें भी उठा लाया था; और नहीं तो रेल में कुछ पढ़ लेगा, घर में तो उसे पढ़ने का अवसर ही बहुत कम मिलता था। सारा दिन तो ताश खेलने में ही जाता था। हर बार ऐसा ही हुआ करता था। तिवारी जी के यहाँ अड्डा जमता था। तिवारी, उसका भाई राय और कोई एक और! कभी उनकी बहन, कभी माँ, कभी कोई गली-मुहल्लेवाला। पर इस बार उनके एक रिश्तेदार की लड़की भी तो आई थी। बहुत शौकीन थी वह ताश की और साथ ही ताक थी। खूब चौकड़ी जमा करती थी। हर बाजी के बाद साथी बदलते और जब वे दोनों इकट्ठे बैठते तो समझो तिवारीजी के लिए पीसना ही पीसना रह जाया करता।

फिर दृश्य बदला।

उन्हीं में से वे एक दिन पढ़ रहे थे एक मोटी-सी पोथी। बाहर मेंह बरस रहा था। छम-छम बुलबुले उठते थे और अपने क्षणिक जीवन के बाद सहर्ष मर जाते थे। कम से कम मालूम तो ऐसा ही होता था। आखिर मृत्यु है भी क्या ! ऊपर से वह आयी। धीमे-धीमे छाता लिए, हरीकेन लेम्प पकड़े जिसकी चिमनी पर पानी की बूंदें पड़ने के कारण सुम-सुम हो रही थी।

बिना किसी से पूछे-ताछे वह सीधे उसके पास आ खड़ी हुई, बोली, "सुधान दादा, चलो। तुम्हारा ही तो इन्तजार हो रहा है ! आज कैसी जमेगी पार्टी। चाय भी तो है। अंगीठी कम्बल, कितना मजा आयेगा। आज भवानी को हराया नहीं तो कुछ बात न बनेगी। उस दिन का चैलेंज याद है न तुम्हें ?"

राय उसे टाल न सका था। जाने का दिल न होने पर भी वह मूक-सा पशु-सा उसके पीछे चल पड़ा था। वैसे ही जैसे एक बार एक नन्हीं-सी चुहिया ऊँट की नकेल को पकड़ कर जंगलों-पहाड़ों की सैर कराती रही थी और ऊँट उसके पीछे चलता गया था।

उस दिन कैसा मजा रहा था। कुड़-कुड़ करते पापड़। सुप-सुप गरम गरम चाय और ऊपर से ताश की बाजी। वह दिन उसे सदा याद रहेगा। रात को १॥ बजे लौटा था।

फिर राय महाशय ने अपने आप को देखा बाहर धूप में कुर्सी डाले हुए, अपनी पुस्तक पर झुके हुए। ऊपर से लीला आ गयी थी, "अच्छा सुधान दादा, तुम इतना कैसे पढ़ सकते हो ? तुम्हारा मन कैसे लगता है ?" तो उन्होंने कहा था, "यह

भी कोई पूछने की बात है लीला ! पढ़ने के समय पढ़ना चाहिए, खेल के समय खेलना।"

"अच्छा, मैं भी पढ़ूँगी। दोगे तुम कोई पुस्तक ?"

उन्होंने उसे बंकिम का एक उपन्यास दे दिया था। उसके बाद उसके तकाजे कितने बढ़ गये थे। नित्य एक न एक पुस्तक खत्म कर डालती थी।

इसके बाद उन्हें कालिज लौट आना पड़ा था, पर वायदा भी करना पड़ा था होली में फिर आने का।

इस बार होली सचमुच होली ही थी। क्या लुत्फ था गुलाल और अबीर का ! लीला ने उनका मुख लाल कर दिया था और मुँह में मिठाई ठूँस दी थी। इस बार वह सब के लिए कोई न कोई उपहार लाया था। हर एक पर नाम लिखा था "अपनी बहन इन्दु को"—"अपने भाई तिवारी को" और बंकिम के एक वाल्यूम पर, जिसकी जिल्द वह स्वयं बनवा कर लाया था, लिखा था "अपनी लीला को—राय !"

राय इन्हीं विचारों में खोये हुए-से बैठे थे। घड़ी ने टन टन कर के बजाये—दस।

सुखदास उसी प्रकार मूर्तिवत् खड़ा था, हाथ में अगली सुनहली किताब लिए, पर उसका धैर्य इतना न था, हो भी कैसे। उसने चुप्पी, तोड़ते हुए कहा, "खाना, बाबू, दस बज गये। खाँसी आने लगेगी। अब चलिए, सोने का समय—"

"रहने दो सुखदास। महाराज को कह दो खाना नहीं होगा। तुम भी खा-पी लो। मुझे इच्छा नहीं।"

"पर आपने तो मछली बनवायी थी! कितने दिनों बाद यहाँ मछली मिलती है"

"सो तो ठीक है सुखदास, पर तुम जाओ। हाँ, यह हुक्का.........।"

सुखदास आगे बढ़ा, चिलम उठाने के लिए, पर फिर न जाने क्या सोच कर राय ने उसे रोक दिया, "रहने दो इसे भी। डॉक्टर ने लिखा है तम्बाकू ज्यादा न पिया करो।"

"देखो बाबू, सर्दी बढ़ रही है, खाँसी भी। अब सोना ही चाहिए।"

पर राय ने उस ओर कोई ध्यान नहीं दिया। बैठे ही रहे। रोशनदान से बाहर घने-काले चीड़ के वृक्षों को भेदती हुई उनकी दृष्टि अपने मोहल्ले पर जा गढ़ी।

उस दिन से उनका आना-जाना बन्द हो गया। तिवारी ने कहा, "बाबा कहते हैं बहुत खेल लिया, कुछ काम भी करना है या नहीं; परीक्षा सिर पर आ गयी इसलिए अब पार्टी न बैठा करे तो अच्छा हो।" सुधान ने मामूली-सी बात समझी। बड़े-बूढ़े कई बार ऐसी छोटी-छोटी बातों पर रोक देते हैं, पर उस दिन जब तिवारी को घूमने के लिए बुलाने गया और जो उत्तर उसने दिया उससे उसे बहुत चोट पहुँची। वह जानता था कि न तो उसे जुकाम है और न सर्दी ही अधिक, यूँ ही न जाने के बहाने बना रहा है। फिर मिलना-जुलना बहुत कम हो गया। लीला के तो दर्शन ही नहीं हुए। एक बार वह सामने से गुजरी थी, शायद गुसलखाने से नहा कर निकली

थी। पीठ के खुले बाल और अधबँधी धोती यही कहते थे, पर उसने नहीं बुलाया। आँख बचा कर निकल गयी।

अब राय के लिए गाँव में रहना भी कठिन हो गया और उसने वापस जाने का प्रोग्राम बना लिया। माता-पिता, भाई-बहन सब ने रोका, पर वह नहीं माना। कह दिया, "यहाँ पर पढ़ाई नहीं हो सकती। मिलना था सो मिल लिया। अब जाकर परीक्षा की तैयारी भी तो करनी है।" इस दलील के आगे कोई नहीं बोल सका। सुधान तैयार हो गया। ताँगा बुलाया गया और वह चल दिया।

उधर गली के मोड़ पर, नुक्कड़ में खड़ी थी, लीला कुछ छिपी-सी, कुछ खोई हुई-सी। जब गाड़ी वहाँ पहुँची तो उसने ठहराने का संकेत किया। गाड़ी रुकते ही उसने ताकी खोली और सीट पर पुस्तक रखते हुए कहा, "सुधान दादा, आपकी पुस्तक मैंने पढ़ ली।"

फिर वह खड़ी रही, चुपचाप। सुधान भी हिला नहीं, कह नहीं सका कि यह उसी के लिए लायी गयी थी। बंकिम उसे बहुत पसन्द था। हाँ, वह सुनहरी जिल्द उसने खास उसी के लिए बनवायी थी। ताँगेवाले ने देर होती देख, खीझ कर कहा, "कब तक खड़ा रहना होगा बाबू? गाड़ी छूट जायगी।" और उसने बिना कुछ उत्तर पाये धीरे से ताँगा चला दिया।

लीला खड़ी रह गयी, सुधान मूकमूढ़-सा बैठा रहा। थोड़ी दूर जाकर उसने मुड़ कर देखा भी। वह अभी खड़ी थी। दीपशिखा-सी! ताँगे पर आँखें गड़ाये निर्निमेष! इसकी परवा न करते हुए कि कोई उसकी ओर देख तो नहीं रहा था।

छावनी के घण्टे का फिर शब्द हुआ—'टन !' एक बजा था।

हवा तेज हो रही थी। शाँ-शाँ और भी भयानक लगती थी, जब-तब गीदड़ों के बोलने की आवाज़ भी मिल जाती थी। लैम्प की थिरकती-सी बत्ती झुकी-सी जा रही थी, कभी इस ओर कभी उस ओर। सुखदास पास बैठा था, न जाने किस विचार-सागर में डूबा हुआ। घड़ी के 'टन' से वह अपनी तन्द्रा से चौंका, "छोड़ो बाबू! देर हो रही है, एक बज गया। लैम्प में तेल भी नहीं, देखिए न टिमटिमा रहा है। बनिया भी दूकान बन्द कर चुका होगा, नहीं बोतल आध बोतल ले आता।" दोनों ओर से चुप्पी रही। सुखदास राय के मुँह पर आँखें गड़ाये खड़ा था, शायद स्वामी कोई आज्ञा देदें। पर उन्हें कुछ न कहता देख वह बोला, 'आपको बैठना ही है तो देखता हूँ। अन्दर ही सोता है, मिन्नत कर के जगा लूँगा।"

"क्या मूर्ख हुए हो सुखदास! इतनी सर्दी पड़ रही है, मरना है क्या तुम्हें? मैं वैसे ही ठीक हूँ।"

सुखदास चुप रहा केवल हैरान होता हुआ कि आज उसके स्वामी को हो क्या गया है। पाँच घण्टे से वही किताब हाथ में लिये हैं। न पन्ने उलटते हैं न पढ़ते हैं; वैसे ही कवर पर दृष्टि गाड़े—अपलक। और राय सोच रहे थे—

फिर वह आई. सी. एस्. हो गया, भारत भर में प्रथम आया था। हर अखबार में उसने फोटो भेजे थे कि कहीं 'कोई' देख कर बधाई का पत्र लिख दे, केवल इतना ही 'सुधान दादा, मुबारिक—तुम्हारी लीला'। इसी से उसकी तृप्ति हो जाती। पर नहीं वह कठोर थी, निष्ठुर!

कितनी बार गाँव में जाना हुआ था। माँ मरी तब, पिता मरे तब, पर वह नहीं मिली उसने शोक प्रकट नहीं किया कि "सुधान दादा, ईश्वर की इच्छा!" सहानुभूति का एक शब्द नहीं लिखा। यह नहीं कि उसे पता ही न चला हो; आखिर ऐसी बातें कब तक छिपी रहती हैं! पर वह पाषाण हृदय—! कभी दूसरी ओर से सोचते, "आखिर लाभ ही क्या पत्र का। मृत्यु महान! पत्र तुच्छ!! क्या अस्तित्व है पत्र का मृत्यु के आगे।"

पर कहीं वह भी तो नहीं चल बसी। नहीं ऐसा कभी नहीं हो सकता। आखिर उसे पता लगता ही सही। तिवारी बात न करता उसका नौकर ही कह देता, वह तो उनके यहाँ नित्य आया जाया करता था। नहीं, वह नहीं मरी। जीवित है, उसने किसी खुशकिस्मत का घर बार बसाया होगा—ओह!

एक झोंका हवा का आया। लैम्प ने 'झप' की और बुझ गया। सुखदास ने दियासलाई जलायी, अन्धकार को और भी भयानक बनाने के लिए। राय ने खीझते हुए कहा "क्या करते हो सुखदास! रहने दो। अब उसमें और तेल नहीं, व्यर्थ बत्ती को क्यों जलाते हो?" खाँसी का एक लम्बा दौरा हुआ और फिर चुप। सुखदास कुछ चिंतित हुआ कि कहीं फिर कुछ हो तो नहीं गया पर जब उसने सुना, "सुखदास एक गिलास पानी" तो उसे धैर्य हुआ। "पानी बाबू जी, इस समय तो आपको पानी नहीं पीना चाहिए।"

राय क्रोध में आ गये, "मेरे टुकड़ों पर पला है और चला है मुझे सिखाने। सुअर पाजी कहीं का! तुझ से कहता हूँ पानी।"

सुखदास मशीन की तरह उठा; मशीन की तरह ही चला और पानी ले आया। मशीन की तरह ही क्योंकि उसमें इच्छा न थी, चाह न थी, अपनापन न था।

घट-घट राय पानी चढ़ा गये।

"ओ क्या ठण्डा पानी है!" ठण्डा! यदि उसका कलेजा भी कभी ठण्डा होता! उन्होंने देखा अपने को लीला के साथ वैवाहिक-जीवन बिताते हुए। एक दो बच्चे—बुढ़ापे में आराम करते हुए, कहीं किसी पहाड़ की गुफा में पर साथ-साथ।

फिर छावनी का पहरा बदला। घड़ी ने टन-टन किये दो!

बिजली चमकनी शुरू हुई, पानी पड़ने लगा। साथ में बहते बर्फीले नाले की धार तेज हुई, गड़-गड़ हुई और इधर बढ़ी राय की खाँसी। जैसे इसी बार आकर सदा के लिए रुक जाना चाहती हो, सब अरमान निकाल लेना चाहती हो। बीच में खाँसी में अटकते दो-चार टूटे-फूटे शब्द सुने सुखदास ने "सुखदास पानी।"

सुखदास ने कहा, "बाबू!"

और बाबू ने कहा, धीरे से मानों हवा को सिखा रहे हों कि इतने जोर से सर-सर नहीं की जाती, धीरे-धीरे चला जाता है, "हाँ सुखदास, मैंने अपनी लीला को ही दी थी यह पुस्तक!"

सुखदास ने कहा, "बाबू रात अधी तो बीत गयी। आपकी तबीयत खराब हो रही है, चलिए सो जाइए। कहिए तो यहीं बिस्तर चारपाई लाऊँ?"

उत्तर में केवल पुस्तक के नीचे गिरने को एक 'ठप' सी हुई और फिर सब सुनसान!

हवा, बिजली और पानी ने जोर पकड़ा।

जनवरी १९४४।

नरेन्द्र*

अच्छा अश्वनी ! तो मुझे कल जाना ही होगा, नरेन्द्र ने उत्साह से कहा 'मुझे एक होल टाईम ट्यूशन मिल गई है, पास ही एक गांव में, पर कभी कभी आया करूंगा शहर में, तुम्हें मिल जाने के लिए।'

मुझे खुशी भी हुई और दुःख भी। खुशी इस कारण कि बेचारा ग़रीब आदमी कहीं चार पैसे कमा लेगा और दुःख इस बात पर कि फिर नए सिरे से कोई मित्र ढूंढना पड़ेगा। इतने वर्ष नरेन्द्र के साथ बीत गए थे अतः मुझे किसी और की आवश्यकता ही न पड़ी थी।

नरेन्द्र मेरा मित्र था। इस लिए नहीं कि हम सहपाठी थे, अथवा पास पास ही रहते थे बल्कि इस लिए कि हमने कई एक सुनहली सन्ध्याएँ शहर की चीं-पों से बाहर इकट्ठे बिताई थीं, कई चाँदनी रातों में हमने इकट्ठी बोटिंग की थी और बीच में कहीं, किसी हल्की सी धारा में लंगर डाल कर घण्टों आपस में घुल मिल कर बातें की थीं। जलधारा के आलिंगन को ढोला

*लेखक की प्रथम रचना, जो ज्यों की त्यों प्रेस में दी गई है।

करके कभी कभी शीतल समीर हमारे केशों में से मार्ग बनाते कहीं निकल जाया करता था। आज भी जब उन दिनों की याद आती है तो स्मृति-पटल पर एक नक़शा सा खिंच जाता है। समय के कराल हाथों ने अभी उसे धुन्धला नहीं किया। मैं और नरेन्द्र मित्र थे, भाई होते तो कहीं अच्छा होता।

मेरी उस पर श्रद्धा थी और उसका मुझ पर प्रेम। 'पत्र लिखते रहना, उन्हें ही अपना साथी बनालूंगा।' मैंने अश्रुपूरित नेत्रों से उसे कहा।

दूसरे दिन प्रात: ही नरेन्द्र चला गया, फिर लौटा नहीं। कभी कभी लौटा करती है उसकी याद, और उसकी लम्बी लम्बी चिट्ठियां लेकर बैठ जाया करता हूँ, मानों दो घड़ी उसी से घुलमिल कर बैठा हूँ।

गाँव में पहुँचते ही उसने लिखा—'अश्वनी! मैं यहाँ पहुँच गया हूँ। रास्ते में कष्ट नहीं हुआ। जमींदार साहब आप ही मुझे लेने स्टेशन पर पहली बार आए थे। बहुत भले आदमी हैं। मुझे अभी ज्ञात नहीं, मुझे किसको पढ़ाना है, क्या पढ़ाना है। एक दो दिन में जान जाऊँगा। स्थान बहुत सुन्दर है, नदी के किनारे एक बागीचे में डेरा मिला है। अभी इतना ही है, बाकी फिर लिखूंगा'।

इसी प्रकार कई एक पत्र और आए और मुझे यह ज्ञात हो गया कि उसका दिल वहाँ लग गया है। स्थान खूब सुहावना है, न गरमी है, न सरदी। शहर की सन्ध्या उसका मन नहीं लुभा सकी—गाँव में जब इन्दिरा नदी सोने की चादर सी बन जाती है तो उसका मन खिल उठता है। नदी से प्रातःकाल

उठती हुई धुन्ध को किस प्रकार तीर सी भेदती हुई, रश्मियाँ उसके बिस्तर पर पहुँचती हैं, उसने यही' अनुभव किया है। शहर में तो उसने सूर्योदय कभी देखा ही न था। उसे एक लड़की को बी० ए० की परीक्षा दिलवानी है। फिलास्फी तो उसका अपना विषय है, उसमें तो उसे खूब तैयार कर लेगा। अंगरेजी भी तो उसने खूब पढ़ी है, कितना ही शेक्स्पीयर उसे कण्ठस्थ है। कितने ही पत्रों में उसने वे सिर पैर की मारीं। कीट्स उसे बहुत सुन्दर लगा है। मिल्टन, शैले और बायरन तो उसके सामने तुच्छ हैं। पर हाय! वह भरी जवानी में ही चल बसा। एक दृष्टि-कोण से यह अच्छा भी है, संसार यह तो कहेगा, अभी और जीता तो क्या क्या करता, अभी बच्चा था। किसी न किसी पाठक का मन तो भर आयगा। उसने भी लिखा है 'my heart aches' पर मुझे तो उसकी वह छोटी सी कविता बहुत पसन्द है, 'and no birds sing' उसकी भी यह इच्छा है कि वह 'कीट्स' जैसी आयु गुजारे। जवानी में ही मर जाए। कोई एक 'फैनी' ('कीट्स' की प्रेयसी) उसे भी मिल जाती तो वह जीवन सफल मानता। सफल प्रेम में वह 'कुछ' नहीं जो असफल प्रेम में। इच्छा की पूर्ति उसे कुछ वैसी लगती है। एक वस्तु चाहने और फिर उसे न पाने में जो सुख है उसका वह अनुभव करना चाहता है। उसमें ही सन्तुष्ट रहना चाहता है। शराब कड़वी है पर मधुशाला तक पहुँचने में जो मिठास है वह कहीं नहीं। मैं वही मिठास चाहता हूँ मुझे कड़वी हाला से मतलब नहीं। प्याले को होंठ तक लाने में ही इतना खुमार आ जाता है कि पीना न पीना एक बराबर है। और जब

होंठ तक पहुँच कर प्याला टूट जाए तो उसे फिर पाने को जी करता है और उसे फिर न पा सकने में एक ऐसा रस है जो पी जाने में नहीं।

कई बार पहले भी उसने ऐसी अंट-संट बातें कहीं थी, पर मैंने यही सोचकर उन्हें कोई विशेष ध्यान नहीं दिया कि जवानी की उमङ्ग है, हर एक युवक के मन में उठती हैं ऐसी ही लहरें। उमर पाने पर मनुष्य यह सब कुछ भूल जाता है। घर-बार, काम-काज, बीबी बच्चों से ही फुर्सत नहीं मिलती कि इन बातों का फिर ध्यान आए। अपनी शिष्या के बारे में उसने बहुत कम लिखा। हां, एक बार उसने लिखा तो था कि समझदार है। फिलास्फी में बहुत मन लगाती हैं। घण्टों बहस में गुजर जाते हैं, कोई भी बात हो विवाद हो जाता है, परन्तु जैसे तुम्हारे साथ तूतू-मैंमैं हो जाती थी, वैसी नहीं होती। उसमें भी एक आनन्द था, इसमें भी है। वहां प्रेम के मारे हम इतने बढ़ जाते थे, यहां जरा शर्म मासूस होती है। एक बार उसने लिखा था, पेंटिङ्ग का शौक रखती है, कभी कभी जब हम किताबों का बस्ता उठाकर इन्दिरा के किनारे जा बैठते हैं तो वह अपनी नोट बुकपर ही पैन्सिल से हवा में हिलते हिलते वृक्षों के चित्र बनाने लग जाती हैं। नाम रमना है और भाई बहिन कोई नहीं। कभी कभी हम नाव में सैर को निकल जाते हैं। वह चप्पू मारती है, मांजी उन्हें सिखाता है। मेरा जी फिर गाने को मचल उठता है, वही गीत—जो तुम्हारे साथ कभी बैठकर गाया करता था—'कहां टिकाऊँ पैर—नहीं ठौर ठिकाना' पर सोचता हूँ क्या कहेगी, इसलिए चुप कर रहता हूँ इत्यादि,—

ऐसे कई एक पत्र उसने मुझे लिखे परन्तु मैंने साधारण समझ फैंक डाले। आज जी चाहता है कि वह भी पास रखता। एक मूक कवि के उद्गार इकट्ठे कर रखता। सचमुच वह कवि था और कितनी स्पष्टभाषा में उसने अपनी कविता कही थी, मनकी उठती को शान्त किया था, परन्तु मैंने सबके सब ही नष्ट नहीं किए, सम्भाल भी रखे हैं कुछ, जो कभी कभी खोल-कर बैठ जाया करता हूं।

उसे गए वर्ष भर बीतने वाला था। रमना की परीक्षा आ पहुँची थी और एक ही दो मास उसने रमना को और पढ़ाना था। तभी उसने मुझे लिखा—

'अश्विन ! बहुत दिनों तक अपने पत्रों में यहां-तहां की बातें करता रहा। नाव चलाई, खाना खाया, सैर की, पढ़ा-पढ़ाया इत्यादि पर मैं अपने मन का भार नहीं उतार सका। आज साहस कर रहा हूँ। देखिए, कितना कुछ लिख सकता हूँ कितना कुछ मन में रह जाता है। तुम जानते ही हो, मनुष्य अपने विचारों का दसवां भाग भी तो नहीं लिख सकता। मैंने तुम्हें लिखा, रमना मेरी शिष्या है। मैं उसे फ़िलास्फ़ी और अंगरेज़ी पढ़ाता हूँ। मैंने यह भी लिखा था कि मैं उसे खूब पढ़ा रहा हूँ। फ़िलास्फ़ी मेरा अपना विषय है, अंगरेज़ी मैंने खूब पढ़ी है। पर अश्विन ! मुझ से कहा नहीं जाता कि मैं रमना को कुछ भी न पढ़ा सका। वह ही मुझे पढ़ाया करती है। उसके सामने तो मुझे वह भी भूल जाता है जो मुझे दो क्षण पहले अच्छी तरह याद रहता है। आखिर ऐसा क्यों होता है। इसका कुछ उत्तर

पाने के लिए तुम्हें लिख रहा हूँ। तुम दे सकोगे ? तुमने संसार देखा है।

"उस दिन मैं रमना को फिलास्फी पढ़ा रहा था, बहस हो रही थी कि कई एक ऐसी घटनाएँ भी हो जाया करती हैं जिनका कारण हम नहीं जान सकते। विद्वानों ने कहा है कि cause और effect कारण और कार्य का एक दूसरे से इतना गहरा सम्बन्ध है कि एक के बिना दूसरा नहीं रह सकता। तो क्या कारण रहता अवश्य है, हम उसे ढूंढ सकें या न, यह दूसरी बात है और ऐसा भी हो सकता है कि एक घटना का कारण कई एक पहली घटनाओं में रहता है और हम किसी एक घटना को इस घटना का मूल कारण नहीं कह सकते।'

"इस पर उसने प्रश्न किया कि प्रेम का क्या कारण हो सकता है ?" मैं इस प्रश्न के लिए कदापि प्रस्तुत न था। खैर मैंने कहा—"प्रेम स्वाभाविक है, मनुष्य को प्रकृति की देन है। मनुष्य संसार में रह कर अकेला नहीं रह सकता। उसे समाज में रहना है और जब वह उनके साथ प्रतिदिन बोलता-चालता खेलता कूदता, खाता पीता है तो उनके साथ उसका एक रिश्ता सा बन जाता है। यह सम्बन्ध जब और भी गाढ़ा होता है तो हम इसे प्रेम कहना शुरू कर देते हैं"।

वह मेरे उत्तर से सन्तुष्ट नहीं हुई। उसने कहा—"हम बचपन से अपने मां बाप, भाई बहन में रहते हैं, उनके साथ खाते पीते हैं, हँसते खेलते हैं और उनसे प्रेम करने लगते हैं। पर कई बार ऐसा भी हो जाया करता है कि हम उनसे भी बढ़कर किसी 'एक और' को प्रेम करने लग जाते हैं—हालांकि

वह हमारे जीवन में पीछे से पदार्पण करता है।"

"तुम जानते ही हो इस विषय पर मैंने कभी विचारा भी न था। मैं समझता था कि इस पर सोचना मग़ज़पच्ची करना ही है। पर यहां तो पढ़ा रहा था, कुछ न कुछ उत्तर तो देना ही था। मैंने कहा—'यह एक हृदय का दूसरे हृदय से नाता है। बच्चा पिता को कम प्यार करता है मां को अधिक, क्योंकि उसके हृदय के साथ उसका रिश्ता गहरा है। इसी प्रकार उसे यदि कोई और हृदय मिल जाए जो घर वालों से भी ज्यादा उसे अपना लगे तो वह उससे नाता जोड़ने को मचलने लगता है, जुड़ जाने पर हम इस नाते को प्रेम कहते हैं।

"तो आपके विचार में पहली बार देखकर प्रेम नहीं किया जा सकता, हालांकि संसार में जितने प्रेमी हुए हैं उन्होंने देखते ही प्रेम करना आरम्भ कर दिया ?'

मैं उसे पढ़ा रहा था, उसके आगे कैसे झुकता चाहे यह मेरी कमजोरी ही है। कुछ न कुछ उत्तर देना ही था। मैंने कहा—'हृदय अपने जैसा ही कोई और हृदय पाने को सदा तत्पर रहता है। आंख के आंख को देखने से पहिले ही हृदय, हृदय को देख लेता है, और यदि उसे कुछ अपना सा लगे तो उसे अपनाने का यत्न करता है और आंख को आदेश देता है कि वह आंख को देखे। बस इसे ही कहते हैं पहली बार देखा प्रेम और यह सम्भव है।'

"पर सच कहूँ तो अश्विन ! मुझे अपने आप पर विश्वास जाता रहा है जानता हूँ कि उसे सन्तुष्ट नहीं कर सकता। वह मुझसे कहीं अधिक आगे है। कभी सोचा करता था कि मैं सब

विषयों पर बोल-लिख सकता हूँ पर यह मिथ्या भूल थी। आज अपनी कीमत जान पाया हूँ। क्या तुमसे आशा करूं कि तुम मेरी उलझी हुई गुत्थियां सुलझाने की कोशिश करोगे? अवश्य !'

तुम्हारा—नरेन्द्र

बहुत विचारा मैंने कि इसका क्या उत्तर दूं—क्या उत्तर हो सकता है। कई बार सोचा कि लिखदूं कि मैं इस विषय में कुछ नहीं कह सकता, पर यह लिखना मुनासिब न समझा। कहीं निराश ही न हो जाए। खैर, मैंने लिख डाला कि ऐसी बातें पत्रों में नहीं की जातीं, जब मिल बैठेंगे तो इस विषय पर सोचेंगे कि प्रेम का सम्भवत: क्या कारण हो सकता है।

अपनी चाल पर दिन बीतते चले गए। मैंने कई बार सोचा कि और कोई साथी ढूंढना पड़ेगा, नरेन्द्र चला गया है, पुस्तकें भी कब तक किसी का साथ दे सकती हैं। आखिर एक ऐसा समय भी आजाता है कि उनसे भी मन ऊब जाता है, पर मैं मन का कोई और साथी ढूंढ न पाया। नरेन्द्र नरेन्द्र था, कोई और कोई और !

जिन दिनों मेरी सगाई की बात चीत चल रही थी उन्हीं दिनों उसने मुझे एक और ऐसा ही पत्र लिखा, जिसे मुझे सम्भालना पड़ा। उसने लिखा था—

'अश्विनी! इधर कुछ दिनों से स्वास्थ्य ठीक नहीं रहा। खांसी हो गई थी-अब भी है। रमना को भी ठीक तरह से नहीं पढ़ा सका। एक तो इसलिये कि स्वास्थ्य ठीक नहीं और दूसरे इस लिए कि मैं उसे सन्तुष्ट नहीं कर सका कि मनुष्य प्रेम क्यों

करता है। वह भले ही सन्तुष्ट हो गई हो, लेकिन मैं अपने उत्तर से सन्तुष्ट नहीं, आँख ऊपर नहीं उठती। आज तुम्हारे सामने एक और प्रश्न रख रहा हूँ, इसका उत्तर पत्र में देने का यत्न करना, तुम्हें जाने कब मिलूंगा और मुझे यह उत्तर भी जिस काम के लिए चाहिए वह शायद तुम्हें मिलने के बाद न कर सकूँ। जरूर उत्तर देना।

तुम्हारे साथ शहर में इतनी देर रहा, पर इतने बड़े शहर में मेरा मन इतना नहीं लगता था जितना इस छोटे से गाँव में। जाने क्यों ? शहर के बड़े-बड़े महल, राजाओं महाराजाओं की कोठियां, जिन पर रुपया पानी की तरह लगा है, इतनी सुन्दर नहीं लगीं, जितना गांव में इन्दिरा के किनारे का यह झोंपड़ा। साफ़ सुथरी सड़क और मोटर गाड़ियों पर मेरा मन नहीं रीझा परन्तु जी चाहता है कि इस टेढ़ी मेढ़ी पगडण्डी पर, जो दूर तक हरे-हरे खेतों से होती चली गई है, गोधूलि के बेला बैलगाड़ी में बैठकर सफर करूँ। रंग-बिरंगे वस्त्र पहने शहर की चपल चपलाओं में इतना आकर्षण नहीं जितना यहां की फूहड़ औरतों में जिनके फटे पुराने चीथड़ों से ही उनका यौवन फूटा पड़ता है। आखिर यह सब क्यों है ?"

कालिज में, बहुतेरों ने कहा कि भाई ! थोड़ा समय हमें भी दे दो, पर मैं न माना। आज मेरा जी करता है कि दिन के यदि २५ घण्टे भी हों तो मैं रमना को पढ़ाता ही रहूँ और वह मुझसे पढ़ती रहे, मेरे साथ बहस करती रहे। मैं कभी न थकूंगा, इससे कहीं अधिक कर सकूँगा।

जीवन में जो यह परिवर्तन-सा आ गया है, इसका कारण

क्या हो सकता है ? बहुत सोचा है पर मुझे कुछ नहीं सूझ पड़ता। तुम्हें लिख रहा हूँ, इसलिए कि मैं कहना चाहता हूँ और मेरा कोई है नहीं जिसे कहूँ। अश्विन ! मुझे क्षमा करना, तुम्हारा बहुत समय इस तरह ले लेता हूँ, पर करूं क्या और कोई चारा नहीं। मन का बोझ हलका करके तुम पर लाद देता हूँ और एक तुम हो कि सब कुछ सह लेते हो। क्योंकि मैं अब भी हूँ तुम्हारा— 'नरेन्द्र'

दो चार घरों से लोगों ने कहा था। पिता जी इसी सोच में थे कि किसको "हाँ" की जाय और किसको "न"। एक एक से बढ़ कर था। उन्हीं दिनों नरेन्द्र का एक और पत्र आया—

"अश्विन ! रमना की परीक्षा में कुछ दिन ही रह गए हैं, उसके बाद मुझे छुट्टी मिल जाएगी। जिमींदार साहिब की इच्छा है कि परीक्षा के बाद रमना की शादी करदें—अब वह जवान भी तो हो गई है और उन्होंने तुम्हें पसन्द भी किया है। इधर मैंने जाना है कि तुम्हारे पिता जी और ज़िमींदार साहिब में बात पक्की हो रही है। अब मेरी यह प्रार्थना है कि तुम उससे अवश्य ब्याह कर लेना। तुम्हारे साथ उसकी जोड़ी खूब सजेगी।

मुझे तो कोई चुम्बक पृथ्वी से खींच कहीं ऊपरी लोक में ले गया, और मैं खिचता भी गया। अब चुम्बक वाला तो अपना चुम्बक उठा लेना चाहता है। परिणाम क्या होगा, जानते हो ? यही, मैं धड़ाम से नीचे आ गिरूँगा। चोट तो आएगी ही, सिर माथा फोड़ बैठूँगा। उस फटे हाल में मैं तुम्हें अपना मुँह नहीं दिखाना चाहता। अश्विन, मेरे सिर रमना को चाहने का अभियोग भी है। कभी कभी सोचा करता था कि यदि इस तरह

पढ़ते-पढ़ाते ही आयु बीत जाए तो अच्छा हो, पर यह ठीक है कि रमना तुम्हारे साथ सुखी रहेगी, मेरे साथ तो उसे दुःख ही झेलना पड़ता। इन्हीं दिनों की एक स्नैप भेज रहा हूँ, और यह पत्र। स्वयं आते तो शर्म सी लगती है। तुम भी मुझे ढूंढने की कोशिश न करना। तुम्हारी स्मृति लिये जाता हूँ, इसके लिए क्षमा करना।

तुम चिरंजीव हो यही मुझे कहना है।

तुम्हारा—नरेन्द्र।'

उस दिन के पश्चात् नरेन्द्र मुझे नहीं मिला। बम्बई मद्रास तक तो छान मारा, उसका कोई पता नहीं चला। कोई कहता है कि वह गुजरात की ओर चला गया और उधर ही कहीं स्कूल मास्टरी कर ली। एक अन्धेरे, गन्दे सड़े मकान में पड़ा रहा करता था। खाँसी पहले से ही थी, क्षय हो गया। इस भरी जवानी में जब उसके खिलने के दिन थे, वह मुरझा गया।

अब भी जब याद आती हैं, वह चान्दनी रातें, वह सुनहली सन्ध्याएं, तो मन रो उठता है और उसके यही तीनों पत्र जो जान पड़ता है कहीं वर्षा में रह गए हों और भीग गए हों, उठा लेता हूँ और फिर पढ़ जाता हूँ। आँखों में एक धुन्ध सी आ जाती है और उस धुन्ध में दीखते हैं दो धुन्धले से प्राणी 'कीटस' और 'नरेन्द्र'। शनैः शनैः धुन्ध पिघल जाती है और दो आँसू टप-टप गिर पड़ते हैं।

रमना से जब कभी नरेन्द्र की चर्चा होती है तो मैं कहता हूँ—'वह कवि था' और वह कहती है—'कवियों में कवि 'कीट्स' उन्हें बहुत पसन्द था।'

१९३८

तनख़ाह

सात जनवरी की रात, रात १०॥ बजे। पानी खूब पड़ रहा था और हवा में तेज़ी और तीखापन था। अभी तक दो पुरुष और एक स्त्री जो शायद दोनों में से किसी की पत्नी नहीं थी, न बहन ही, बैठे हुये थे। सात बजे वे केबिन में घुसे थे और अब दो बोतल ह्विस्की और उसको हज़्म करने का थोड़ा बहुत सामान ख़ाली करके उठे थे। स्त्री के पावों ठीक से न पड़ रहे थे और दोनों पुरुषों में से एक, जो कि अधिक जवान था और बढ़िया सूट पहने था, उसकी कमर में हाथ डालकर उसे चलने में सहायता कर रहा था। उनके निकलते ही मैनेजर ने होटल का दरवाज़ा बन्द कर दिया और अपनी कुर्सी पर बैठ कर दिन का हिसाब मिलाने लगा। पैसे की गरमी भी शायद ठण्ड को नहीं रोक सकी और उसने एक अंगीठी लाने के लिये आवाज़ दी, जो तत्काल ही उसकी दोनों टांगों के बीच में रख दी गई। कुछ देर वह हिसाब मिलाता रहा और फिर सब पैसे बटुए में बन्द कर ड्राॅर में रख दिए और ताला लगा दिया।

सरदी के मारे दाँत जरा कटकटाए फिर आवाज़ दी 'ओ, एक कप चा लाना।' 'क्या सरदी है!' पीछे, धीरे-से जोड़ दिया।

'हाँ, क्या काम था, याद नहीं आ रहा।' कुछ सोचते हुए सामने दीवार पर देखा। एक कैलेण्डर टंगा था जिस पर लिखा था 'डोंट बी बेग—आस्क फ़ार हेग' और उस दिन की तारीख़ की पर्ची थी। और हाँ आज सात तारीख़ है। तनख़ाह देनी होगी। प्रिंसिपल क्यों तोड़ा जाए। यह छोकरे भी तो जभी खड़े हैं फिर आवाज़ दी—'लाल!'

बीसेक वर्ष का युवक। सफ़ेद अचकन, सफ़ेद पायजामा। और सफ़ेद पगड़ी। हरे रंग का कमरबन्द; बोला—'साब'

'अरे साब के बच्चे तनख़ाह नहीं लोगे! यह भी मैं ही याद करवाऊंगा? मुझे याद नहीं रहा, तुम्हीं याद करवा देते। मैं सात के पीछे किसी का पैसा नहीं रखता! बुलाओ सबको।'

आशा की एक रेखा 'साब के बच्चे के मुंह पर चमकी, आँखों में थोड़ी मुस्कान आई, सरदी थोड़ी देर के लिए गरमी हो गई। वह हँसते हँसते अन्दर गया और सब को बुला लाया।

'सब आ गए न? देखो सात के पीछे मैं किसी का पैसा नहीं रखता। काम लेता हूँ तो दाम नकद देता हूँ—क्यों?' मैनेजर ने कहा।

इस बार पण्डित जी बोले—'ठीक है साब! काम औ दाम तो साथै-साथ चलते हैं।'

'हां पण्डित जी, आप ने कुछ लिया?' ड्रार से कापी निकालते हुए साब ने पूछा।

'देख लो साब ! लिखा होगा' पण्डित जी कुछ आगे बढ़-कर बोले।

लिखा तो है, पर तुमने लिया क्या है ?'

'तीन रुपया होंगे साब। दो एक मरतब लिए थे और एक उस दिन।'

'यहाँ भी तीन लिखे हैं—ठीक। कुछ तोड़-फोड़ ? अच्छा नहीं। लीजिए, आपके हुए कुल सत्रह रुपये।' साब ने १७ रुपए के काग़ज उसके हाथ पर धरते हुए कहा।

'कुछ तरक्की होगी साब ? पिछले महीने आपने कहा था। घर में तकलीफ है, इसी से कहता हूँ और लड़ाई की वजे से मंहगाई भी हो रही है।'

'तरक्की ! देखते नहीं क्या मंदा पड़ रहा है ? कहाँ २२ सेर लगता था, कहां १५ सेर ही लगता है। अगले महीने देखेंगे। हाँ भगतराम !'

'जी...' भगतराम आगे बढ़ कर बोला।

'क्या लिया है ?'

'.........'

'मैं पूछता हूँ, क्या लिया है ?' मैनेजर इस बार जरा ऊँचे स्वर में बोला।

'मेरे हिसाब से तो दो रुपये १० आने बनते हैं साब।'

'दो रुपये दस आने ! तीन रुपये दस आने लिखे हैं। एक रुपया उस दिन जो लिया था पण्डित जी के साथ।'

'हां साब, वह गिनके ही २ रुपये १० आने तो होते हैं।'

तो मैं झूठ बोलता हूं। अँय! कापी में गलत लिखा है!! अच्छा कुछ तोड़-फोड़?'

'दो बड़ी प्लेट, तीन प्याले, तीन गिलास—'

'और उस दिन काँच का बड़ा जग!' छोटा लौंडा बोला।

'हाँ हाँ जग' साब ने कहा 'दो रुपये उसके। देखते नहीं, लड़ाई की वजे से क्राकरी कितनी महँगी हो रही है।'

'साब वह पहिले ही फूटा था। मैंने कह भी दिया था कि यह काम नहीं करेगा पर आप माने ही नहीं।' भगतराम रोनी सी सूरत बना कर बोला।

'फूटा था! कैसे फूटा था! तुम्हीं से तो गिरा होगा। हाँ, कुल बने पाँच रुपये। धोबी के कितने?—एक रुपये तेरह आने। कुल हुए सात आने दस रुपये। क्या मिला तुम्हें? तीन रुपये नौ आने। हाँ, ठीक है। यह लो चलो। हाँ रणजीत! साहब ने तीन रुपये नौ आने भगतराम की हथेली पर रख दिये।

'साहब, कल की छुट्टी चाहिए। बाप आया है घर से।' भगतराम ने गिड़गिड़ा कर कहा।

'कल की छुट्टी! शुक्रवार के दिन कभी छुट्टी मिलती है? गोरों का दिन है। बाप आया है घर से! तुम पहिले पूछ क्यों नहीं लिया करते?'

रणजीत आगे बढ़ा। १५-१६ वर्ष की वयस। बाल खुश्क और बढ़े हुए। ढीली सी लम्बी पतलून और छोटा सा-वास्कट-नुमा कोट जिसके ऊपर की जेब में एक सफ़ेद रुमाल जो अब

काला होने की कोशिश कर रहा था। कोट के कालर पर कागज का बना हुआ गुलाब का फूल।

'क्यों बे, क्या लिया ?'

'लिखा होगा साब। मेरे को याद नहीं रहता।'

'याद नहीं रहता !' कापी देखते हुए साहब बोला 'कुछ तोड़-फोड़ ?'

धोबी, एडवांस और तोड़-फोड़ का हिसाब जोड़ कर साहब ने बताया कि वह अपनी तनखाह से ६ आने अधिक ले चुका है। रणजीत के मुँह का रंग उतर गया।

साहब बोला—'और लगा फूल बेटा ! इस महीने तुम्हें कुछ नहीं मिलने का। लेकिन गिड़गिड़ा कर उसने एक रुपया मंजूर करवा ही लिया। साहब उसका लिहाज करते थे। सब्जी तरकारी बाजार से वही खरीद कर लाता था और साहब को यह मालूम था कि यदि उसे खुश न किया तो वहां से काफी जेब काटेगा।

लाल, मसालची, पैंटरीमैन, बर्तन साफ करने वाले, सब को निपटा कर साहब बोले 'क्या मुसीबत है। इतना पानी पड़ रहा है, थमने में नहीं आता। गाहक भी कम हो रहे हैं, खर्च बढ़ रहा है।'

कुछ सोच कर ड्रार में से बोतल निकाल कर एक घूंट पिया और मुँह पिचका लिया जैसे कुनीन मिक्सचर की खुराक पी हो।

फिर कहने लगे—'सुबह क्या बनेगा ? आलू मटर ? देख बे, मटर दो आने वाले लाया कर और एक सेर बहुत हैं। और

इतनी रात तक बत्ती मत जलाया करो, बिजली का बिल देखो कितना बढ़ गया है।

जेबों में हाथ डाल दो मिनट कमरे में चलते रहे फिर बोले—'ओ छाता देना तो मेरा, क्या मुसीबत है!' ओवर कोट के उठे हुए कालर और मफ़लर में उन्होंने मुंह छिपा लिया और होटल से बाहर हो गए।

साहब के बाहर निकलते ही लाल ऊँचे स्वर में बोला, 'पिल्ला।' उन लोगों ने साहब का यही नाम रख छोड़ा था। फिर दूसरे बैरों को चैलंज करता हुआ कहने लगा 'लगती है? आओ-आओ! सब किस्मत का खेल है। फ्लाश!—नौसरी! दुस्सर !—चलो-चलो।'

'क्या मिले सत्रह रुपए ही तो! मैं खाऊं, बीबी खाए, बच्चे को दूध मिले, ललू की फीस दूँ? सुबह से शाम तक यहाँ घिसता हूँ! सब 'डिश' तैयार हों—देशी, अंगरेजी, बंगाली, गुजराती!' पंडित जी असंतोष से बोले।

पैंटरीमैन ने कहा—'मैं तो इस पहली से रीजेंट में जा रहा हूँ। 'टिप' तो मिलती है, तनखाह बेशक न मिले!'

'बीबी-बच्चे हैं, नहीं तो सोचता हूँ लड़ाई पर चला जाता—पचास-सौ रुपया बच जाता। अब के ललवा पांचवीं में होगा, फीस बढ़ जाएगी। पर इन्हें क्या?'

दीवार पर लगी घड़ी ने ११ के घंटे की सूचना दी।

'ओह ग्यारह बज गए! देख तो भैया, पानी बहुत तो नहीं है। चलोगे? सुबह जल्दी आना होगा।'

पंडित जी और पैंटरीमैन पीछे की ओर चले गए।

लाल फिर बोला—लगती है नौसरी, दुस्सर, फ्लाश, सब किस्मत का खेल है।

चारों-पाँचों बैठ गए। देख बे सम्भल के खेलियो। नकद! उधार नहीं चलेगा।' लाल ने कहा, फिर बेसुरे गले से गाने लगा—'न दिल ही दिया होता, न प्यार किया होता।'

आध घण्टा भर खेल हुई फिर लाल ने जेब में पैसे बजाए। 'चलो कौन चलता है गर्म होने?'

भगतराम ने उसकी ओर तरसती आँखों से देखा। वह हार गया था, नहीं जीत जाता तो वह भी इसी तरह नाचता और आगे बढ़कर कहता हूँ, सब हाथ की सफाई है। किस्मत का खेल है। चलो-चलो भी यार!

रणजीत बोला—'मुझे ले चलेगा लाल?'

'अजी! ले चलेगा लाल! शक्ल देखी है आशिक की!' फिर छाती पर हाथ मार कर बोला—'क्यों है कोई जवान, नहीं शेर आता है।'

'अच्छा एक चवन्नी उधार दे दे, कल ले लेना।' रणजीत ने फिर लाल की मिन्नत की।

'छः आने लूँगा! है मंजूर?'

रणजीत कुछ बोला नहीं। सोचता खड़ा रहा।

'ओ भगत पिछली बार भी जद्दो तेरा पूछती थी। चल हो आ एक बार।'

भगतराम फिर चुप था।

दो एक बार फिर उसने सबसे पूछा, फिर बोला—'देख

दरवाजा बन्द मत करना। मैं आ जाऊँगा। क्यों बेटा रणजीत, है सलाह ?'

रणजीत बोला नहीं, लेकिन जब लाल ने बाहर जाने के लिए दरवाजा खोला तो वह भी साथ बाहर हो लिया। मसा-लची और पंडित जी पहिले ही चले गए थे। भगतराम प्रेम और भोला खड़े थे। भगतराम बोला—'साला देता क्या है। सुबह से शाम तक जुते रहते हैं और रुपए चौदह ! बैल मर रहा है, बाप कहता है, तीस रुपए चाहिएँ, बैल खरीदने को। साला देगा ! एक आह उसके दिल के नीचे से फिसल कर बाहर हो गई। 'चलो भई देर हो गई। सुबह फिर जागना है।'

उसने बत्ती बुझा दी।

अंगीठी के बुझते हुए कोयले जो अभी तक बिजली की रोशनी में बुझे हुए मालूम होते थे, अंधकार में जलते दिखाई देने लगे मानों कह रहे हों, अभी हममें चिनगारी है।

औरतों के दर्ज़ी

बीसवीं सदी के इस चवालीसवें वर्ष में जब कि स्त्री पुरुषों की क़बें एक हो रही हैं, लिबास पहनावा एक हो रहा है खाना पीना एक हो रहा है, हज्जाम तक एक हो रहे हैं, दर्जियों का अलहदा होना आँखों में चुभता-सा है और फिर बरसात के मेंढक की-सी रफ्तार जिस पर इतनी दुकानें बढ़ रही हैं, अखरती है। निस्बत रोड, बीडन रोड और टैम्पल रोड के एक हिस्से में इनकी दुकानें इतनी आम हैं जैसे बम्बई में चाय वालों की; जहाँ पैसे प्याली से दो आने प्याली तक चाय हर समय हाज़िर मिल सकती है। इन के नामों से ही एक पूरी डाइरेक्टरी बन सकती है और लेडीज़ दर्ज़ी एसोसिएशन ने यह प्रस्ताव पास भी कर दिया है कि लड़ाई के बाद वह अपनी एक डाइरेक्टरी छपवाएँगे, जो लाहौर स्टेशन पर बिका करेगी, शहर में हर नये आने वाले के हाथ तक इसे पहुँचाने के लिए भरसक प्रयत्न किया जाएगा। भला कौन याद कर सकता है, हमामदीन लेडीज़ टेलर, लेडीज़ टेलरिंग हाउस; लेडीज़ ओन कट्टर एण्ड टेलर, कल्थू टेलर लंदन

डिसोमाड......कितनी ही दुकानें हैं, नाम लिखने के लिए एक पूरी डाइरेक्टरी चाहिए और याद करने के लिए दिमाग का एक फर्स्ट क्लास कम्पार्टमेंट।

ज्यों-ज्यों कपड़ा महँगा होता जा रहा है त्यों-त्यों यह दुकानें बढ़ रही हैं। 'ट्रिब्यून' अखबार में इनके इश्तहार निकलते हैं—भला दर्जियों ने भी कभी इश्तहार दिए और वह भी औरतों के दर्जियों ने। मर्दों के दर्जी इश्तहार दे दें तो भला कुछ बात हुई; पर नहीं साहब इमामदीन लेडीज़ टेलर का छः इंच डबल कालम का इश्तहार अक्सर पहले सफ़े पर छपता है। कत्थू लंडन डिसोमाड टेलर की सलाइड, जो उसने बम्बई से बनवाई है, रीगल और माजा में रोजाना हर शो में दिखाई जाती है। इस 'लंडन डिसोमाड' के भुलावे में लड़कियाँ इस कत्थू दर्जी की दुकान पर टूट पड़ती है। उन्हें यह ख़याल ही नहीं आता कि उनके काम के टेलर को तो लाहौर डिसोमाड होना चाहिए क्योंकि जैसी पोशाक वह पहनती हैं उसके लिए तो सब से बड़ा केन्द्र लाहौर ही है और यह भी कि उसकी कटाई की क्लास लंडन के किसी भी दर्जी कालिज में नहीं लगती। सलवार, कमीज़, जम्पर आदि की कटाई लंडन में नहीं, लाहौर में सीखनी चाहिए पर नहीं साहब इस 'लंडन डिसोमाड' लफ़्ज़ की कमाई वह कत्थू खाये जा रहा है और फिर मजा तो यह कि देहली से आगे वह बढा ही नहीं। लाहौर से ही उसने कुछ पाऊँड लंडन भेज दिए थे और वहाँ के एक कालिज ने, जो मालूम नहीं कालिज भी है या नहीं, एक बड़ा बढ़िया-सा सर्टिफिकेट इसे भेज दिया था। फिर स्याने लोगों को, जो यह

कहा करते हैं कि औरतों और भेड़ों में कोई फ़र्क नहीं, मालूम नहीं क्यों कोसा जाता है।

सरकार बहादुर ने जिन दिनों कपड़े पर मोहरें लगाने और कपड़ा कंट्रोल करने का एलान किया था और दुकानों को ३१ अक्तूबर तक पिछला माल साफ करने की मोहलत दी थी, मालरोड और अनारकली की दुकानों ने तो क्या उच्ची बाजार की दुकानों ने भी क्लीयरेंस सेल के इश्तहार दिये थे और डोंडियाँ पिटवाई थीं। जगह-जगह नए-नए डिपो खुल गए थे और वह कपड़ा जिसने मुद्दत तक दिन न देखा था हाथों हाथ बिकने लगा। डोरिए, जीने, मलेशिये, टेबल-क्लाथ तौलिए, जो चूहों से भरे गोदमों मे पड़े रहा करते थे, आलमारियों मे सजा दिए गए थे और आलमारियों में धरा बढ़िया कपड़ा उन अँधेरे गोदामों में, धर दिया गया था, जिन्हें चोर बाजार कहा जाता है।

लोगों ने सोचा कपड़ा सस्ता हो गया, बेचारे गरीब-गुरबा ने फ़ायदा उठाना चाहा और उधार माँग कर भी थोड़ा बहुत कपड़ा खरीद लिया। मन्नासिंह ने भी अपनी पत्नी के लिए छींट का एक सूट खरीदा।

उस दिन उसे छुट्टी जल्दी हो गई थी। सरदार कृपालसिंह के यहाँ वाहेगुरु की कृपा से साठ वर्ष की उम्र में बच्चा पैदा हुआ था और वह भी लड़का—गोरा-गोरा लाल लाल। जवानी में उन्होंने कोशिश की कि तेजकौर, जो एक बड़े घराने की लड़की थी, से कोई लड़का, जो आगे चल कर उनके बुढ़ापे की लाठी बनेगा, हो जाय पर उनकी सब कोशिशें निष्फल हुईं।

जब हजारेक के लगभग रुपया, रोकड़ में, ज्योतिषियों, साधुओं मुल्लाओं के नाम निकलने लगा तो हार कर इस निश्चय पर पहुँच गए कि तेजकौर से उन्हें बच्चे की आशा न रखनी चाहिए। फिर एक दिन सोते समय जब तेजकौर उनके पास पड़ी थी, उन्होंने उसे कह दिया—तेओ मैं तो अब हार गया। लाख इलाज तेरे भी करवाए हैं और अपने भी; पर मालूम होता है बेटे का मुँह देखना लिखा ही नहीं।

तेज निकट लगते हुए बोली, 'आप बुरा न मानें तो एक बात कहूँ ?'

'हाँ कहो। तुम्हारी बात का मैंने कभी बुरा मनाया भी है !

'तुम एक ब्याह और कर लो। हमारे पिंड में एक लड़की है, जवान शर्मीली, देखने में सुन्दर और बिलकुल गऊ। मैं उन्हें कहूँ तो वह मान भी जाएँगे।

सरदार कृपालसिंह पिछले कुछ दिनों से स्वयं ही यही सोच रहे थे, उम्र के साथ साथ बेटे की चाह बढ़ रही थी। जब तेज ने भी कह दिया तो उन्होंने दूसरा ब्याह कर लाने का पक्का निश्चय कर लिया। महीने भर में तेज ने उनका ब्याह उस गऊ से करवा दिया, जो चारासानी के बावजूद भी कृपालसिंह को कोई बछड़ा न दे सकी। चारा-सानी खब हज़म होता देख तेजो और कृपालसिंह आह भर कर रह गए। फिर उसने सरदार जी की तीसरी शादी करवाई। सुनते हैं काश्मीर के महाराणा प्रतापसिंह ने मरते समय अपने भतीजे हरीसिंह से कहा था जब तक पुत्र पैदा न हो शादी करते जाना। तेजकौर से जाने किसने कहा था, जब तक तुम्हारे पतिदेव के घर पुत्र न हो

उनकी शादी करवाती जाना। इस तीसरी बीबी से सरदार जी के घर साठ वर्ष की उम्र में बच्चा पैदा हो गया। पहले तो इससे भी निराशा हो चली थी पर भला हो उस चौड़ी छाती और तनी हुई मूछों वाले चपड़ासी सोहनसिंह का, जो उन्हें एक साधु के पास ले गया जहाँ से लौटने के ठीक दो सौ असीवें दिन उनके पुत्र रत्न उत्पन्न हुआ। तो इस पुत्र जन्म की खुशी में खुशियाँ मनाई जा रही थीं, और डेरी के कर्मचारियों को एक मास की तनख्वाह पुरस्कार स्वरूप मिली थी—जाने क्यों, इनका तो पुत्र जन्म में कोई हाथ नहीं था।

मन्नासिंह की जेब में पच्चीस रुपये के नये-नये नोट चुरमुर चुरमुर कर रहे थे। बार बार वह कोट के अंदर की जेब में हाथ डाल कर उन्हें सम्हाल लेता, कहता, 'अन्दर ही भले हो', पर वे बार-बार बाहर निकल आना चाहते। नये नोटों में न जाने यह क्या बुरी आदत है। ज्यूलर ब्रादर्स, जिन्होंने लेरो के सामने अपना डिपो खोला था, से एक युवती निकल रही थी। देखने में वह भारी थी पर आकर्षक और उसकी पोशाक भड़कीली थी और दुकान का नौकर एक बंडल उठाए उसके पीछे चला आ रहा था। बड़ी दुकानों ने अब ऐसा सिस्टम, जिसे वह होम डिलीवरी कहते हैं, बना लिया है कि पन्द्रह रुपये माहवार पर कुछ छोकरे रख लिए जाते हैं जो ग्राहकों का सामान उनके घर तक पहुँचा आते हैं और जिनकी तनख्वाह कपड़े के दाम बढ़ाकर ग्राहकों से निकाल ली जाती है। यह तरीका विलायत का है, इसलिए ग्राहक ज्यादा पैसे देने में कोई आपत्ति नहीं करते।

मन्नासिंह ने सोचा उसकी बीबी भी कितने दिनों से बाहर अन्दर जाने के लिए एक सलवार-कमीज़ मांग रही है और फिर अब सौदागरसिंह के ब्याह पर भी तो जाना पड़ेगा। नए सूट का होना ज़रूरी है। सब औरतें नए सूट पहनेंगी, इसने न पहना तो यही तो कहेंगी, न जाने मन्नासिंह कैसा आदमी है, बीबी को दो जोड़े कपड़े भी नहीं बनवा दिए। लाहौर में इतने बड़े ठेकेदार के पास काम करता है। वह औरतें यह सब कहते वक्त वह ध्यान नहीं रखतीं कि लाहौर जैसे मंहगे शहर में जहां मन्नासिंह को हफ्ते में एक बार साबुन से धुले कपड़े पहनने पड़ते हैं और जहाँ पानी भी मोल बिकता है, पच्चीस रुपये में बीवी के लिए अन्दर-बाहर के कपड़े बनवाना मुश्किल काम है। वह यह सोचता जा रहा था और उसके पाओं जैसे अपने आप उस दुकान पर चढ़ते जा रहे थे जहां से वह सात गज़ प्रिंटेड छींट रुपये गज़ भाओ से यह सोचते हुए कड़क लाया था कि अगर सूट सिला अच्छा तो खूब खिलेगा। उसे कदाचित ऐसा ख्याल आता पर उसी दुकान पर खड़ी एक लड़की बिलकुल उसी कपड़े की कमीज़ पहने थी। कसी हुई कमीज जिसका गले का आकार आगे पीछे से 'वी' था, ऊंची एड़ी की नोक को छूती हुई खुली खुली सलवार और चुनट दिया हुआ दोपट्टा जो उसकी दो वेणियों के बीच में से साँप की तरह गुजर रहा था। खैर मन्नासिंह ने सोचा यह पीछे से 'v' कहाँ से शुरू हुई है। उसे तो ख्याल नहीं था कि दर्जी फेशन अब्बाजान के घर से नहीं लाते। नये पुराने मिला कर ताजे कर देते हैं। पीठ

पर की 'v' की जगह उसकी पीठ पर कुछ बढ़े हुए 'बाल' भी थे जो न्यू बोट से उड़ाए नहीं गए थे। इसका कारण शायद यह ही था कि इश्तहार में दी हुई मेम की पीठ की जगह 'यहाँ से भी उड़ाइए' सूचक तीर नहीं था।

उस लड़की पर यह कपड़ा खूब खिल रहा था, शानो पर खिल सकता था, हाँ यदि सूट अच्छी तरह सिला हो। उसने फिर एक बार उस लड़की की कसी हुई कमीज पर नजर डाली और यही निश्चय किया कि वह यह सूट किसी अच्छे से दर्जी से बनवाएगा। पैसे थोड़े ज्यादा भी लग गए तो भी कोई बात नहीं, बेचारी खुश हो जाएगी और उसके कसे हुए गठीले शरीर पर कितना खिलेगा वह सूट, इसकी वह कल्पना करने लगा। इस लड़की की तो कमीज कसी है, उसका बदन भी कसा है।

बीडन रोड पर कत्थू दर्जी का बोर्ड उसने कई बार आते-जाते पढ़ा था और वहाँ लगी भीड़ भी देखी थी। उसने सोचा पहले वहीं से पूछेगा। वह अच्छा दर्जी मालूम होता है। दो चार मोटर-ताँगे हमेशा उसकी दुकान के आगे खड़े रहते हैं। अनारकली से उसके पैर बीडन रोड की ओर घूमे।

एक स्त्री जो घुटनों तक प्लश का कंमल ओढ़े थी फिटन से उतरी और कत्थू की दुकान पर चढ़ी साथ ही मन्नासिंह भी बगल में पुरानी ट्रिब्यून अखबार में लिपटा सात गज प्रिंटेड छींट सम्हाले। वह स्त्री जरूरत से ज्यादा मोटी थी, काले रंग की थी, मुँह पर कील और छाइयाँ थीं और काफ़ी 'मेक अप' किए थी। काले-काले ओठों पर लाल रंग लगा

कर उन्हें जामनी कर लिया था और मोटे मोटे पोपले-ढीले गालों पर सुर्खी लगाकर उन्हें बिलकुल लखनवी बैंगनों जैसा बना लिया था। कोई लखनवी सब्जी बेचने वाला उसे देखता तो शायद पूछ ही बैठता—'यह बैंगन क्या भाओ किए हैं। तेल कुछ ज्यादा छोड़ा है। भड़कीले कपड़े पहने थीं। सिल्क की गुलाबी रंग की कमीज जिसकी बाहें दर्जी ने शायद गलती से लगा दी थीं कुलचे की तरह फूली हुई और जेली की तरह ढीली बाँहों पर दोनों ओर, रुपये के बराबर बड़े-बड़े शीतला माता के टीके के दाग़-जिस डाक्टर ने उसके बचपन में टीका किया था उसमें इतनी दूरदर्शिता नहीं थी कि सोच सकता कि उसके जवान होने तक बाहें उड़ जाएंगी और यह बड़े-बड़े दाग भद्दे लगेगें। सफ़ेद लट्ठे की सलवार और चुनट दी हुई चुनरी वह पहने थी। उसके अन्दर कदम रखते ही कत्थू ने जो एक सफेद पतलून, सफेद रेशमी कमीज़ और वास्कट पहने था, आगे बढ़ कर अभिवादन किया और सोफे में बैठने को कहा। दर्ज़ी की दुकान में सोफे ! मन्नासिंह का ध्यान अपने घर में धरी टीन की साढ़े तीन टाँगों की कुर्सी जिसके नीचे एक ईंट रख कर उसे खड़ा किया जाता था, की ओर गया। वह मोटी औरत सोफे में धरे एक फैशनेबल बुर्के को परे करते हुए बैठ गई। सोफ़ा की सीट निश्चय ही ज़मीन के साथ जा लगी होगी।

कत्थू ने पूछा 'कहिए बहन जी' अच्छी तो हैं न ? आपके कपड़े बस तैयार हैं।' और फिर आवाज़ दी, 'अरे गामू बीबी जी का वह आकेड का जम्पर लाना तो।'

मोटी औरत ने शिकायत करते हुए कहा—'देखूँ तो कैसा सिया है ? मास्टर जी मैं आपसे बहुत नाराज़ हूँ।'

'मुझसे !' अनजाने में कोई गलती हुई हो तो माफ़ी माँगता हूँ। वैसे जिस तरह मैं आपका काम करता हूँ।'

मोटी औरत ने बीच में ही बात काटी, अरे बातें न बनाओ। येही काम करते हो ! उन्होंने अपनी कमीज़ को दोनों हाथों से बदन पर से उठाते हुए कहा—येही फिटिंग है, एक आदमी और अन्दर घुस जाए—

मुँद्दू, गामा, और नत्थू, जिन्हें उनके माँ बाप ने कत्थू के यहाँ शागिर्द रख छोड़ा था और जिन्हें कत्थू एक आना, चार चपतें और ढेर सी गालियाँ रोज़ देता था और जो लोहा-गरम करते और सीटी में 'साढे कोलूँ बटन चंगे जेड़े सीने नाल लाए ओए नी' बजाते बटन आदि लगाया करते थे, एक दूसरे की ओर देख कर हँस पड़े।

कत्थू बोला—आज कल लूस फिटिंग ही पसंद की जाती है और आप अगर टाइट फिटिंग चाहती हैं तो इस बार अगर ऐसी फिटिंग न हुई तो हाथ काट लीजिएगा। और उसने उस मिट्टी की मेम की ओर संकेत किया जिस पर जाने लेई लगाकर उसने बलाउज़ चिपकाया था और जो कत्थू के यहाँ की फिटिंग का नमूना था। वह लड़के जिनमें से एक तो बटन लगा रहा था और दूसरा लोहे में मुंह लगा कर राख उड़ा रहा था फिर हंस पड़े। उन्होंने एक बार उस मोटी औरत की ओर देखा और एक बार उस मिट्टी की मेम पर, मोटी औरत ने कहा, अभी देख लेती हूँ।

कत्थू ने कहा, हाँ पर एक बात जान लीजिए। आप हमें ठीक माप तो लेने नहीं देतीं फिर थोड़ी कमी बेशी अगर रह जाय तो—

यह मोटी औरत कत्थू को माप न लेने देती थी। स्वयं फ़ीता अपने चारों ओर लपेट लेती और कत्थू पढ़ लेता कि उसकी छाती साठ इंच है और कमर बासठ। पर दर्ज़ी का हाथ दर्ज़ी का है और अपना अपना। नाप लेने में ही तो सब सफ़ाई है। कत्थू कहता था, यही कारण है कि उनकी फ़िटिंग ठीक न आती थी।

मोटी औरत ने कहा, 'कितनी देर बैठना पड़ेगा ?'

कत्थू बोला, 'जी बस तैयार ही है' और फिर बटन लगाते हुए छोकरे से कहा, 'आ बे देख क्या देर है। लीजिए अभी आता है।'

छोकरे ने आकर कहा, 'जी अभी हो रहा है'।

'अभी प्रेस हो रहा है !'

कत्थू ने उस्तादाना ढंग से कहा, इस वक्त दोबारा प्रेस किया जाता है। असल में उस बलाउज़ के बटन अभी लगने थे, और थोड़ी सफ़ाई भी रहती थी। 'आप बैठिए अभी लिए आता है।'

जिनका बुर्का बाहर सोफ़े पर पड़ा था, ड्रेसिंग रूम से निकल आईं। वह देखने में काफ़ी खूबसूरत थीं। कुछ खूब-सूरती उनकी अपनी कुछ कोरी से माँगी हुई। मेरून रंग की सेटिन का सूट वह पहने थीं जो उनके गुदगुदे शरीर पर जरूरत से ज्यादा फिट आ रहा था और मांस बाहर निक-

लता सा मालूम होता था। वह अपने आपको चारों ओर से देख रही थीं, लोगों की आँखों में तो जचेंगा सो जचेंगा, पहले अपनी आँखों में तो जंच ले।

उसकी ओर देखते हुए करथू बोला—देखिए क्या फ़िटिंग आई है। है इस माडल से कम! आपने ऐसी ही फिटिंग तो चाही थी। उसने फिर उस मिट्टी की मेम की ओर संकेत किया।

वह औरत बोली—कुछ ज्यादा कसा नहीं है क्या?

'आप इसे कसा हुआ कहती हैं। अभी आजकल की लड़कियां इसे ढीला कहती हैं ढीला अगर कसा हुआ होता तो–

'पीछे से तो ठीक है न?' उस औरत ने कहा और पीठ करके खड़ी हो गई।

करथू ने कहा, 'ऐसी फिटिंग इत्तफ़ाक से ही आती है। सब कोई पूछने न लगे तो कहिएगा।'

वह औरत घूम कर खड़ी हो गई। करथू ने पूछा बन्द करवा दूँ?

उन्होंने कहा—नहीं मैं यही पहने रहूँगी। आप वह बन्द करवा दें और मोटी औरत के पास पड़ा बुर्का उसने उठाया।

मन्नासिंह जो कि दरवाजे में खड़ा था, सोच रहा था, जाने यह मुसलमान लड़कियां क्यों ऐसे कपड़े पहनती हैं और क्यों ऐसा मेक अप करती हैं। उपर से उन्हें बुर्का तो ओढ़ना ही है फिर यह सब किस काम। पर नहीं वह अपने मियां को खुश करने के लिए ही शायद यह सब कुछ करती हैं।

बुर्का पहन कर वह बोली, 'आप यह कपड़े और बिल

घर भिजवा दीजिए। मैं इस वक्त कहीं बाहर जा रही हूँ' और बुर्के की पतली नकाब गिराकर वह बाहर हो गई।

मन्नासिंह अभी तक छींट बगल में दबाए दरवाजे में इस इंतजार में खड़ा था कि कब यह औरतें निकलें और कब वह कत्थू दर्जी से पूछे कि वह उसकी बीवी के सूट की बढ़िया सिलाई का क्या लेगा। उन औरतों के सामने जो ऐसे बढ़िया कपड़े पहने थीं, ऐसा मेक अप किए थीं, जो बार बार नज़र उठाकर उसकी भूरी दाढ़ी और कजरारी आँखों में एक अजीब ढंग से देख लेती थीं, वह यह सवाल करते समय जरूर झिझक जायेगा। 'म' पर वह बहुधा अटक जाता है और कत्थू को मास्टर कहना तो बहुत जरूरी है। उस बुर्के वाली औरत के चले जाने पर उसे थोड़ी आशा बन्धी कि अभी यह मोटी औरत भी उठेगी और अभी वह कत्थू से सब बात कर लेगा। परन्तु उसी समय एक कार आकर रुकी और दो युवतियों ने दुकान में बड़ी लापरवाही से प्रवेश किया। जिसके बाल कटे हुए थे वह बहुत पतली और कम-जोर थी। गाल, जिन पर काफी नकली रंग था, पिचके हुए थे, छाती तंग थी और कमर पतली। दूसरी देखने में न अच्छी थी न बुरी। उसकी शक्ल से इतना अवश्य टपकता था कि वह दरमियाने दर्जे के घराने में से है और कटे बालों वाली की 'येस फ्रेंड'। उसके हाथ में कोई कपड़ा था जो उसने मेज़ पर रख दिया।

उसके अन्दर प्रवेश करते ही कत्थू ने नमस्कार किया,

हँस कर कहा, 'इस बार बहुत दिनों पीछे आई हैं। कहिए अच्छी तो हैं ?'

'हां' अभी उस दिन ही तो काश्मीर से आई हूँ।'

'अभी तक वहीं थीं ?'

'हाँ काश्मीर में रहने का असल मौसम तो यही है। रश, भीड़-भड़ाका भी खतम हो जाता है, फल-फ्रूट भी उतर आता है।

कत्थू हाँ में हाँ मिलाते हुए बोला, 'हाँ यह तो ठीक है। बैठिए न।'

'नहीं वक्त ज्यादा नहीं' उस कटे बालों वाली ने घड़ी की ओर देखते हुए कहा, 'रीगल पहुँचना है' कपड़े को खोलते हुए कत्थू ने कहा—कपड़ा तो बहुत बढ़िया है। क्या भाओ मिला है ? कोट बनेगा क्या ?

कटे बालों वाली बोली, नहीं ब्रीचिज'।

'आपकी ! बहुत अच्छा। माप दे दीजिए' कत्थू ने कहा और पर्दे से बने माप लेने वाले कमरे की ओर बढ़ा।

कटे बालों वाली का स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता इसलिए उसके पिता बहुत चिंतित रहते थे। नवम्बर तक उसे पहाड़ पर रखते, छः अण्डे एक चूजे का सूप और चार चम्मच कॉड लिवर ऑयल रोज देते थे। अबके किसी ने उन्हें कहा था कि घोड़े की सवारी और तैरना, दो ऐसी चीजें हैं जो मुर्दे में भी जान फूँक देती हैं। सो वह एक घोड़ा खरीद लाए थे और अपने पड़ोसी रायबहादुर सूरजमल, जिनके बेटे ने विलायत से मेम लेकर लौटने के बाद घर में ही अपने और

मेम साहिबा के तैरने के लिए टैंक बनवाया था, से आज्ञा ले ली थी कि वह उनकी लड़की को थोड़े दिन अपने टैंक में तैरने देंगे इतनी देर में उनका अपना तैयार हो जायगा। राय बहादुर ने आज्ञा दे दी और बेटे ने वायदा किया कि वह उनकी लड़की को तैरना सिखा देगा। घोड़े की सवारी के लिए ब्रीचिज और तैरने के लिए बेदिंग सूट की आवश्यकता थी इसी लिए वह कत्थू के पास आई थी।

कटे बालों वाली ने अपनी सहेली की ओर देखा और माप देने वाले कमरे में चली गई। सहेली भी अंदर चली जाती पर वहाँ दो मनुष्यों से ज्यादा के खड़े होने के लिए स्थान ही नहीं था।

कत्थू अन्दर माप लेने लगा और बाहर खड़ा कल्र्क जो कापी पेंसिल लिए था, लिखने लगा, लम्बाई इकतालीस, थाई अठारह, हिप चौंतीस, कमर सताईस खुब ग्यारह बिदड़ी..........।

मन्नासिंह सोच में पड़ गया। उसे कुछ समझ नहीं आ रहा था। यह लड़की जो अभी कंवारी ही मालूम होती है यूँही एक पराए मर्द को अपने शरीर का माप दे रही है। उसकी बीवी भी तो है, उसके भी तो कपड़े बनते हैं। धन्ने-शाह दर्जी जो उनकी गली के सिरे पर लकड़ी के चौखटे पर मशीन रख कर बैठता है, कभी उसका माप नहीं माँगता। 'भई एक बढ़िया-सा सूट सी दो' यह कर वह कपड़ा उसके यहाँ छोड़ आता है और तीसरे दिन सूट सिला सिलाया मिल जाता है जो ठीक ही बैठता है। उसने माप कभी नहीं

माँगा—हाँ गली में से गुजरते देख भले ही लिया हो। यहाँ अगर उसने सूट सिलने दिया तो उसे यहाँ माप देने आना पड़ेगा और यह कत्थू दर्जी उस कमरे में उसका माप लेगा छाती इतने इंच, कमर इतने इंच......

माप देकर वह लड़की बाहर निकल आई। पूछा, 'मास्टर जी, आपने कभी बेदिंग सूट भी बनाए हैं?'

बेदिंग सूट! बेदिंग सूठ तो हमारी स्पेशल्टी है। आपने शायद यह नहीं देखा? उसने सामने दीवार में लगी एक तस्वीर की ओर संकेत किया जिसमें एक लड़की सतरंगा बेदिंग सूट पहने खड़ी थी। इस बेदिंग सूट से उसकी छाती का थोड़ा हिस्सा और थोड़ा हिस्सा कमर का ढंका था, पेट और पीठ नंगे थे।

कटे बालों वाली ने कहा, 'मुझे एक डीजाइन पंसद है पर इस वक्त बाजार में मिल नहीं रहा।'

'आप हमें डीज़ाइन और माप दीजिए, हम सूट बना देंगे। आपको पसन्द न हुआ तो सूट हम रख लेंगे। एक सिला-सिलाया तैयार भी पड़ा है हमारे पास। लाना बे वहाँ से बेदिंग सूट' कत्थू ने आवाज़ दी! 'आप बैठिए न।'

'नहीं हमें जल्दी जाना है।'

'अरे ला भी! बस जी एक मिनट।'

गामा बनियान का एक डब्बा ले आया जिसे पोंछ कर कत्थू ने एक 'सूट' निकाला।

मन्नासिंह ने सोचा था शायद सिला-सिलाया सूट इन्हें चाहिए, यह बड़े दर्ज़ी औसत माप की कमीज़-सलवारें शायद

सी के रख देते हों पर कत्थू ने जब उस डिब्बे से से वेदिंग सूट निकाला तो उसे कुछ निराशा हुई। वह रंगदार चीथड़ा सा, रंग भले ही अच्छे थे, आकर्षक थे, पर जगह-जगह से इंगलिस्तान के तट की तरह कटा-फटा था, 'यह सूट'! जिसे गाँव की लड़कियाँ कतरें समझ गुड्डियों के कपड़े बनावें। पर यह पूरा सूट था और लेटेस्ट कट का और फैशन का।

सुनते हैं एक ज़माना था जब एक स्त्री के सूट का कपड़ा अंगुली के छल्ले में से निकल जाता था। आज भी यह सिला-सिलाया सूट का सूट न निकले तो हम झूठे। फिर कौन कह सकता है कि भारतीय कला ने अवनति की है।

कत्थू ने सूट अपनी छाती के साथ लगाते हुए कहा, 'देखिए क्या डीजाइन है!' और कपड़ा भी देखिए, हाथ लगा कर देखिए—

जो लड़का लोहा फूँक रहा था उसने दूसरे लड़के को आँखों ही आँखों में कुछ कहा और दोनों बाहों में मुँह छिपा कर हँसने लगे।

'बिलकुल वही डीजाइन है' कत्थू ने शीशे वाली मेम की ओर संकेत करते हुए कहा।

कटे बालों वाली ने अपनी साथिन की ओर देखा—'क्यों कैसा है?'

'अच्छा है' सहेली ने उत्तर दिया।

कत्थू ने कहा; 'अजी ऐसी चीज़ वार टाइम में मिलने की नहीं आगे आपकी मर्ज़ी।'

कटे बालों वाली ने कहा—'तो फिर यही ले लें ?'

'जी हाँ, यह ले जाइए और जो डीजाइन आपके पास है छोड़ती जाइए, सूट बन जाएगा।'

कटे बालों वाली ने न जाने फिर क्यों पूछा, 'तो फिर ले लूँ ?'

सहेली बोली, 'ले लो'

कल्थू ने इसी बीच में वह 'सूट' 'पेक' कर दिया था, डब्बा उनकी ओर बढ़ाते हुए बोला, 'यह लीजिए'

सहेली ने डब्बा ले लिया।

'अच्छा ब्रीचिज कब तक तैयार हो जाएँगी ?' चलते हुए कटे बालों वाली ने पूछा।

कोई बीस दिन लगेंगे। काम का बहुत रश है।'

जल्दी नहीं दे सकते ?'

'देखिए न कितना काम पड़ा है। फिर ब्रीचिज की सिलाई भी तो बक्त खाती है'

'अच्छा' कह कर वह चली गईं।

कल्थू उस मोटी औरत की ओर घूमते हुए बोला, 'जी मिल गया आपका जम्पर ?'

'बातें बनाते हो मास्टर ! उहूँ यहाँ एक नहीं चलेगी।'

'सचमुच अभी नहीं मिला ? अरे अभी तक जम्पर प्रेस नहीं हुआ क्या ?' ऊँचे से आवाज देकर फिर उस मोटी औरत से कहने लगा, 'बारीक काम में आप जानती हैं देर लग ही जाती है।'

'बातें बहुत बनाना जानते हो! क्यों न?'

'हें हें हें' कत्थू उस कच्चे चोर की तरह हँसा जिसे चोरी करते किसी साथ मित्र ने देख लिया हो और फिर बात बदलना चाहता हो।

मोटी औरत ने अपना पर्स खोला और छोटे, सफ़री शीशे में मुँह देखने लगीं—बैंगन चमक रहे हैं या नहीं? दाँत निकाल कर देखे और फिर मन ही मन कहा दो वक्त कालीनाश रगड़ती हूँ फिर भी काले के काले! एक दम से होंट भींच लिए।

'आप जानती हैं इन्हें?' कत्थू ने कहा। 'राय बहादुर चौधरी छोटूलाल की लड़की है हमारी पुरानी गाहक है। बड़ा टेस्ट है।'

मोटी औरत ने नाक सिकोड़ ली। उसके सामने वह उस 'बाँकी-पतली' की तारीफ़ कर रहा था, यह उसे अखरा। मन में सोच रही थी, मेरे मुटापे से तो उसका पतलापन अच्छा है। सरदार जी हमेशा मुझसे इसी मुटापे के कारण नाराज़ रहते हैं और उनका वह मित्र भी जो नंद कैलाश से हँस खेल कर बात करता है, मेरी ओर से उदासीन रहता है।

कत्थू ने कल्र्क से पूछा—'क्यों भई बना दिया हसरत बेगम का बिल? सूट की सिलाई सात रुपये लगाना और तीन खर्चे के डालकर दस का बिल बना देना! और गामे तू ने खाँ साहब का घर देखा है न?

गामा, वह लड़का जो अभी तक लोहे पर ही गर्दन झुकाए बैठा था, चमक कर बोला—'जी'। वह दूसरा, गंजा, लड़का

भी जो बटन लगाते लगाते तंग आ गया था चमक कर बोला, 'उस्ताद जी मुझे मालूम है'। सुबह से बैठा वह बटन लगा रहा था, चार चपतें और चालीस गालियाँ खा चुका था थोड़ी तफ़रीह करना चाहता था। जाकर एक आध बीड़ी भी पी लेगा और अपना प्यारा गाना 'मेरे लिए जहान में चैन न करार है' ऊँची सुर में गाएगा और सुबह से हो रही गले की खारिश को मिटाएगा।

'जा जा मैं भी जानता हूँ। हरामी का पिल्ला! काम चोर कहीं का। जा बे गामे उनका सूट और बिल देकर आ। जल्दी लौटना नहीं कान पकड़वाऊँगा।'

'हरामी का पिल्ला' बुलडाग को देख कर दुबक कर बैठ गया और मन ही मन उसे कुत्ते का पिल्ला बनाता हुआ बटन टाँकने का अभिनय करने लगा। गामा विजेता भी हँसी हँसते चला गया। 'मास्टर अब तेरे पास नहीं आना, इतनी देर हो रही है।'

'अरे प्रेस पर ही सो गया क्या? ला जम्पर वहाँ से। घंटे भर से इंतजार कर रही हैं! कल्थू ने ऊँचे स्वर में आवाज दी फिर नम्रता से बोला—'लो जी बस आया।'

अन्दर से एक लड़का एक इन्द्र धनुष रंग का एक जम्पर ले आया। कल्थू ने हाथ में लेते हुए कहा 'आह-हा' क्या ला-जवाब चीज़ बनी है। ऐसी फिटिंग न हुई तो कहिएगा।' उसने फिर मिट्ठी की मेम की ओर संकेत किया।

'लाओ भला देखूँ।'

'देखने की क्या जरूरत है ?'

'न न देखूँ भला' वह स्त्री जम्पर लेते हुए बोली 'मैंने तो तुम्हें गले और बाहों पर झालर लगाने को कहा था।'

'झालर ? क्या कह रहीं हैं ! पिछली सदी का फैशन ! कभी किसी मेम को भी झालर पहने देखा है ?'

'पर मैंने जो कहा था कि जरूरी है।'

'आप—मैं अब झालर लगाए देता हूँ पर गुस्ताखी माफ़ झालर जानती हैं कौन—लेटेस्ट चीज़ है रोबदार !'

'जा बहानेबाज़ कहीं का !'

'उठ बे गंजे, यह जम्पर गाड़ी में रख दे। और बिल भेज दूँ क्या ?'

'हाँ क्यों नहीं ! पैसे लेने को शेर है। भेज देना' कह कर मोटी औरत चलने लगी।

कल्थू की नज़र कोने में खड़े मन्नासिंह की ओर गई। बोला 'कहिए ?'

मोटी औरत ने सोचा शायद प्रश्न उससे किया गया है बोली, 'कुछ नहीं' कल्थू ने सोचा यह शायद उस मोटी औरत के साथ है मुन्शीं या नौकर इसलिए और कुछ नहीं कहा।

मन्नासिंह जो 'मास्टर जी' कहने के लिए 'म' पर अटका हुआ था यह 'कुछ नहीं' और मास्टर का मुँह मोड़ना देख खुश हो गया। सर से बला टली, और वह उस मोटी औरत के पीछे पीछे दुकान पर से उतर गया। चलते समय एक बार उसने उस मिट्टी की मेम की ओर देखा और एक बार उस

मोटी औरत को जो अपने बदन को कसने और पतला बनाने के लिए न जाने क्या कुछ बाँधे थी एक ठंडी साँस ली और घर की ओर मुड़ा—जैसा सूट वह दर्ज़ी दस आने में सीता है वैसा कत्थू दस रुपये में भी नहीं सी सकता फिर कपड़े कसे हुए नहीं पहनने चाहिएँ, लोगों की नज़र जल्दी पड़ती है और बदन को ठीक तरह से बढ़ने का मौका नहीं मिलता। खुले कपड़े कितने अच्छे रहते हैं। पुराने गुरु घंटाल अखबार के बने हुए एक लिफ़ाफ़े पर जिसमें उसने एक बार सब्ज़ी ली थी इसी आशय का एक आधा सा मज़मून उसने पढ़ा था, उसी का ध्यान आ गया था।

आज वह सूट देगा, परसों तक सिल जायगा, दस आने पैसे लगेंगे, खुश हो जायगी। यह लेडीज़ टेलर तो चोर लगते हैं चोर! लुटेरे......!

मई १६४४.

करूँ तो क्या !

ख़ातिर ख़ातिर तो तपाक से की है। चा पिलाई है, चिड़वा खिलाया है। उस बार क्या नाम—से मिलने गया था पानी तक को नहीं पूछा, भई भले आदमी, इतनी गर्मी पड़ रही है। पर नहीं, सम्पादक की कुर्सी पर बैठ कर अपने आपको ख़ुदा समझने लगा है। इन लोगों ने तो ख़ैर सराफ़त से काम लिया है। सुना है अंग्रेज़ सम्पादक भी लेखकों से ऐसे ही मिलते हैं पर वे मीठे मीठे शब्दों के साथ मीठे मीठे पैसे भी देते हैं, कोरी बातें ही नहीं करते। इन्होंने भी पैसे देने को कहा है। सम्पादक जी ने अंग्रेजी में कहा था 'वुई विल पे यू।' हिन्दी में अगर कहते कि आपको यथेष्ट पुरस्कार देंगे तो समझ लेता ६) रुपया कालम का, उस लम्बे ऊँचे दैनिक पत्र का माऊँट एवरेस्ट जैसा कालम, मिल जायगा पर उन्होंने अंग्रेज़ी में कहा है, 'वुई विल पे यू' शायद पेमेंट भी उसी अंग्रेज़ी ढंग से—ज्यादा से ज्यादा क्या दे देंगे २ नहीं ३, कालम के या चुकता दस बारह रुपये नाटक के जिस पर दस बारह दिन लग जाते हैं दो पाइंट खून, रुपया डेढ़ काग़ज पेंसिल का लग जाता

है । रफ़ करो, फेयर करो, फिर सम्पादक की धमकी 'एक कापी अपने पास अवश्य रखिए' जाने सम्पादक लोग पहचान क्यों नहीं रखते कि तीन तीन कापी उतरने पर तिगुना काग़ज लगेगा........और फिर आजकल जब कागज़ की कितनी किल्लत हो रही है। गवर्नमेंट रोज़-रोज नए-नए आर्डर निकाल रही है, कागज़ इस तरह बरबाद नहीं करना चाहिए— यह लोग उन बड़े-बड़े विज्ञापनों को पैसे की ख़ातिर अपने पत्रों में छाप खुशी से लेंगे, उनमें जो लिखा है उस पर अमल नहीं करेंगे। यह दस रुपये, डेढ़ तो कागज़ कलम दवात में उड़ जायगा—

रुपयों की बात नहीं, मान इज्ज़त की बात है। पहले अंक में नाटक जायगा। वह अंक न जाने किस किस की सम्मति लेने यह लोग भेजेंगे। सम्मति देने वाले भले ही नाटक न पढ़ें, मेरा नाम तो पढ़ेंगे और शायद कोई नाटक पर, बिना पढ़े ही, सम्मति भी दे दें। बिना पढ़े की सम्मति अक्सर 'भावप्रद है, ऐसे नाटकों की आवश्यकता है' हुआ करती है ......। पर यह चीप पबलीसिटी होगी ।......

चीप पबलीसिटी !......

चीप पब्लीसिटी, आजकल की सबसे बड़ी ताकत ही यही है। बड़े बड़े मुल्क, बड़ी बड़ी सल्तनतें इसी के सहारे जी रही हैं फिर कलमी घस्यारे, लेखक, को तो अपनी पब्लीसिटी करनी ही पड़ती है। ज़माने की लहर में बह जाना चाहिए। धर्म का जमाना गया प्रेमचन्द अपनी पब्लीसिटी नहीं करते थे, इस लिए हम भी न करें। प्रेमचन्द बढ़िया लेखक थे, मोटा

पहनते थे सादा खाते थे, उनके पास कला थी, उन्हें पब्लीसिरी की क्या आवश्यकता थी ? हमें सूट पहनना पड़ता है, टोप लगाना होता है, बालों में खुसबूदार तेल छोड़ कर पट्टे बहाने होते हैं, समय की कीमत झाँकने के लिए हाथ में घड़ी लगानी पड़ती है, सामयिक साहित्य पढ़ना पड़ता है, दो चार पुस्तकें अंग्रेज़ी की भी पढ़नी ही होती हैं, कुछ चोरी के लिए और कुछ लोगों को दिखाने के लिए कि हम उस भाषा के साहित्य से भी परिचित हैं, इण्डिया काफ़ी हाऊस में बैठकर दो चार मंचले छोकरे-छोकरियों को गांधीवाद, मार्क्सवाद, पर लेक्चर झाड़ना होता है। ऐसे मौकों पर पैसे बेशक वही छोकरे-छोकरियाँ ही देते हैं पर हमें भी तो आत्म-सम्मान को धोखा देने के लिए कभी न कभी दो चार आने तो खर्चने ही पड़ जाते हैं, हम चीप पब्लीसिरी क्यों न करें और आज-कल तो बड़े से बड़ा लेखक करता है, बर्नार्ड शो और वेल्ज़ तक तो अपनी पब्लीसिरी स्वयं करते हैं.........

......पेमेंट की बात उतनी नहीं जितनी नाम की, पब्ली-सिरी की।

नाटक एक घर में पड़ा है—पत्रिका के लिए लिखा था, उनकी पालिसी का न होने के कारण अभी तक वहाँ छपा नहीं, वही दे देते हैं, इनका काम कर देगा। नाम मिल जायगा, एक आध फ़िल्म देखने को पैसे मिल जाएँगे, एहसान भी रहेगा कि इतने शार्ट नोटिस पर नाटक दे दिया, वक्त पर काम आए और आदमी होता ही वही है जो वक्त पर काम आए। पर फ़ेयर करना पड़ेगा, रफ़ कापी बहुत गंदी है और बाज़ार

से इकट्ठे किए गए इश्तहारों की पीठ पर लिखी हुई है। कल रविवार है कोशिश करेंगे, फ़ेयर हो सका शाम तक तो अच्छा। नहीं बड़े आदमियों की तरह कह देंगे, जी वक्त नहीं मिला, आप एक दिन में नाटक की आशा ही कैसे कर सकते हैं, एक दिन तो मूड लाने में ही लग जाता है। हो सका तो अगले अंक में दे देंगे।'......अगला अंक साप्ताहिक अंक भी तो यह बड़े बड़े आदमियों के पास सम्मति लेने भेजेंगे तो!......

धाक तो उनपर काफ़ी जमा दी है। पाँच सौ रुपये माह-वार मिलते हैं। एक पत्रकार के लिए पाँच सौ बहुत बड़ी रकम है। वह हमें 'बड़ा आदमी' समझते होंगे। शायद इस रोब में पैसे भी ज्यादा दे दें। पर क्या दे देंगे—दस पन्द्रह......

सूट बूट धारी, लम्बा-ऊँचा थका हुआ, झुका हुआ वह जवान लेखक बग़ल में फ़ाइल और कंधे पर, बम्बई की मान-सून के डर के मारे, वाटर-प्रूफ़ कोट डाले एक पत्र के आफ़िस से निकला और हार्नबाई रोड पर चलने लगा। सम्पादक के साथ उसका पत्रों से परिचय था, उपसम्पादक से उसकी थोड़ी बहुत जान पहिचान थी। सम्पादक पत्रकार जगत में माना हुआ था इसलिए उसकी ओर से आग्रह और भी वज़न रखता था। उससे वह वायदा करके आया था कि यदि नाटक उसके पास तैयार पड़ा हुआ तो भिजवा देगा नहीं फ़ोन पर खबर दे देगा कि नाटक तैयार नहीं है।

यदि नाटक न भी पड़ा हुआ तो यह नया नाटक दे दूँगा। पर यह नाटक तो मैंने हंस के लिए लिखा है। हंस के सम्पा-दक अमृतराय से मेरा वायदा है जल्दी ही कुछ लिखकर

भेजने का। जल्दी क्या खाक होगी। यही इन्हें दे दूँ। हंस मासिक पत्र है, साहित्यक क्षेत्र में नाम है आज कल बेशक उसमें एक विशेष प्रकार का मसाला ही रहता है पर फिर भी नाम है और यह एक दैनिक! बहुत बढ़िया है तो भी दैनिक ही तो! बेहतर यही होगा इन्हें वही पुराना दूँ और वह न पढ़ा हो तो नया लिखकर दूँ। इधर दो महीने से कुछ लिखा भी नहीं है। इतनी मुद्दत पीछे जो चीज़ लिखी जाती है अक्सर अच्छी होती है। नदी का बन्द खोल देने पर जैसे बाढ़ आ जाती है। यह दो महीने न लिखना भी तो एक बन्द ही सा है। विचार दिमाग़ में उसी तरह सिमट कर नहीं रहना चाहते जैसे बन्द के पीछे पानी। तोड़कर निकल आना चाहते हैं पर समय भी कुछ पाऊँ तो। यह नौकरी भी क्या करली, कुछ भी तो नहीं कर पाता। यह रुपये बेशक मिल जाते हैं पर आत्मिक संतोष नहीं होता, शांति नहीं मिलती, छटपटाता रहता हूँ।

यह नौकरी छोड़ दूँ?

क्या करूँगा? मैं तो भले ही अकेली जान पच्चीस-पचास में गुज़र कर लूँ पर मेरे माता पिता जिन्होंने मुझे पाला पोसा है; बड़ा किया है, कुछ करने योग्य बनाया है, उनकी ओर भी तो मेरा कुछ फ़र्ज़ है।......

इससे आधे रुपये की नौकरी किसी पत्र में मिल जाती तो वही कर लेता। सम्पादक जी से कहा था। इसके आधे दो सौ पचास होते हैं। कौन पत्र देगा दो सौ पचास? हिंदी

के पत्रकार मरते दम तक दो सौ पचास नहीं लेते। कोई एक आध ले ले तो अपवाद ही है।......

सामने से गुजर रही एक छोकरी, जो बड़े अजीब ढंग से वस्त्र पहने थी, गुजरी और उसने उसका ध्यान खींच लिया। लम्बी-ऊँची, गोल-सुडौल, गोरी-चिट्टी! महाराष्ट्री मजदूरिनों जैसी आधी चोली, जिसमें पीठ पर कपड़ा नहीं रहता, केवल दो तनियाँ ही रहती हैं, पर लाल सेटिन की, पीले रंग की जार्जेट की साड़ी पर वैसे ही घुटनों तक ऊँची-ऊँची। मुँह पर बहुत गहरा मेक अप। आँखों की भवें उस्तरे से मुँडी हुई और नर्तकी जोहरा की तरह काजल से कानों तक खिंची हुई, होठों पर 'काले' रंग की ललाई। कानों के पीछे लटकते हुए दो जूड़े, मोटे बरसाती मेंढक के फूले हुए गालों की तरह। बग़ल में शान्ति निकेतन का बना हुआ पर्स और पैरों में मख-मली चप्पल।

......कुछ कहा नहीं जा सकता कौन है। पहली बार ऐसी पोशाक, ऐसा पहरावा हार्नबाई रोड पर देखा है। शायद लेटेस्ट फैशन है। यह अमेरीकन भी आँखें फाड़ फाड़ कर उसकी ओर देख रहे हैं और भृकुटी और मुस्कान के त्रिभाग का भाव दिखाते हुए बढ़ी चली जा रही है। कहाँ जा रही है? होगी कोई, ऐसी बहुत होती हैं। यह अमेरिकन अभी तक उसे खड़े देखते हैं। इन्हीं की एक कहानी लिख दूँ। अमेरिकन सिपाही और हिंदुस्तानी छोकरी की मुहब्बत! मज़मून तो अच्छा है, अन्तरजातीय, अन्तरदेशी......बहुत कम लोगों ने छुआ है। पर यह अमेरिकन इसे प्रेम थोड़े ही करने लगे हैं?

वह तो उनके लिए कौतूहल है और वह तो किसी भी स्त्री को ऐसे घूर कर देखेंगे। वह तो कोई भी स्त्री चाहते हैं। घरों से निकले उन्हें कितनी मुद्दत हो गई है, यहाँ विदेश में पड़े हैं। और बेचारे करें भी क्या? राह चलती पर ही तो घूरेंगे।

लिख डालूँ इसी पर एक कहानी?

......पहला दृश्य अमेरिका के किसी गाँव में रखूँ। अमेरिकन जवान माँ, बाप, भाई-बहन से मिल चुकने के बाद बीवी से आलिंगन करता है, उसे चूमता है, वह उसके गले में बाहें डालकर झूल जाती है। उसकी आँखों में आँसू आते हैं पर हँसने की चेष्टा करती है...जहाज......भारतवर्ष, यहाँ इन्हें कैसे लोग मिले। 'सर जी हजूर' गांधीवादी, जिन्नाहवादी, अय्याश शराबी। कलकत्ते के कहत में बहनों की लाज बेचते भाई, बीबियों को बेचते पति, बेटियों को बेचती माएँ, इन्होंने सब कुछ देखा है, जंगलों में लड़ाइयाँ—घर से पत्र की प्रतीक्षा—किसी एक कँवारे का यहाँ किसी छोकरी से प्रेम पर उसका उससे ब्याह न कर सकना......फिर एक दिन यह लोग विजय का डंका बजाते लौट जाते हैं, इनकी प्रेमिकाएँ जो बर्षों इनकी बाट जोहती रही हैं, चूम चूम कर इनका स्वागत करेंगी। जिंजर रॉजरज जैसे 'टेन्डर कामरेडस' में चूमती हैं कैसा दृश्य होगा! कहानी अच्छी बन सकती है। पर ऐसी कहानियों की विशेष माँग नहीं, आवश्यकता भी नहीं। आजकल साहित्य में आवश्यकता का भी तो ख्याल रखना चाहिये, पड़ता है, नई चीज चलती नहीं। निरी कोरी रोमाँस, चाहे सम्पादक स्वयं पढ़ते समय चुस्कियाँ लेने लगे, पत्र में छपकर

दूसरों को आनन्द भी लेने देगा और वैसे भी इस बात से सहमत हूँ कि लिखने का एक लक्ष्य होना चाहिए अलफ़ लैला के किस्सों का ज़माना गया। अब तो गोर्की चेखव, प्रेमचन्द ज़माना है। उनमें वह कुछ है जिसकी हमें आवश्यकता है। 'माँ' और 'कफ़न' जैसी कहानियों की आवश्यकता है। सशा और पबेल का रोमाँस क्या कम है ?...

तो फिर क्या लिखूँ ?...

...कम्यूनिज़म आजकल बड़ा गरमा गरम विषय है और काम करने वाला कम्यूनिज़म के खिलाफ़ होगा। जहाँ खाने को सबको मिलता है, अपनी इच्छा और शक्ति के अनुसार काम मिलता है पर हिन्दुस्तान के कम्यूनिस्ट मुझे कुछ आकर्षक नहीं कर सके। तो फिर क्या लिखूँ। लिखना तो है ही। वायदा किया है उनसे, वह क्या कहेंगे, कैसा लेखक है एक सप्ताह के नोटिश पर भी नहीं लिख सका। लेखक तो वह जो मिनट के नोटिस पर लिखे। सुना है जैनेन्द्र ऐसे ही लिखता है

पि पि पाँ—ँ पिप...पिप—पाँ—मोटर का हार्न बजा। उसने सामने देखा, थोड़ा शर्मा कर, सभी कह: कर फिर किनारे होकर, सामने देख चलने लगा। सामने रास्ता देखकर चलना चाहिए, भगवान् ने आँखें किस लिए दी हैं। सामने ट्राम है, बस है, मोटर है गाड़ी है, घड़ी है-चार बजे हैं।

···ओह चार बज गए, अभी तो मुझे सेठ बुद्धूमल गदहा-मल के यहाँ जाना है। यह नाम भी क्या है ! पर नहीं इन्ही बुद्धूमल गदहामल से ही मुझे आर्डर मिलेगा, उन्होंने कल वायदा किया था। शायद दस हज़ार का आर्डर मिल जाए।

सौ सैकड़े, सौ रुपये। बरसात ज्यादा हो रही है, वाटरप्रूफ़ से पतलून नहीं बच सकती, अच्छा सा गमबूट लेना पड़ेगा, पच्चासेक में आएगा और यहाँ के फैशन के अनुसार तीन खुली खुली स्फ़ेद पतलून सिलवानी होंगी, सौ रुपये निकल जाएँगे। माँ का पत्र भी आया है, उन्हें दो मास से कुछ नहीं भेजा, जरूरी है। इस मास कम से कम दो सौ रुपये उन्हें भेजने चाहिएँ। सो कम से कम पच्चास हज़ार का बिज-नेस होना जरूरी है। जब कहीं दो सौ रुपये भेजे जा सकते हैं। एक सप्ताह बाकी है। महीने में बीस हजार का बिज़नेस हुआ है, एक सप्ताह में तीस हज़ार! जी तोड़कर मेहनत करूँगा, इधर उधर कोई वक्त फ़िजूल नहीं गवाऊँगा। दिन रात एक करना पड़ेगा, करूँगा, करना ही पड़ेगा। चार बज कर पाँच मिनट हो गए हैं, सवाचार मुझे वहाँ पहुँच जाना चाहिए। सेठ कहीं उठ ही न जाए।

सामने से गुजरती हुई ट्राम में वह कूद कर चढ़ गया।

—यह आर्डर मिल ही जाना चाहिए। सौ रुपये—आज-कल के ज़माने में पच्चीस रुपये कीमत है। खाना पहनना कितना महँगा हो रहा है फिर टीप टाप का खर्च, धोबी का खर्च। सेठ लोग साफ सुथरे टीप टाप मनुष्य से ज्यादा खुश होते हैं जैसे यह टीप टाप पुरुष को स्त्री बना देती हो। इसी टीप टाप की वजह से तो रोज़ शेप करता हूँ। हेजलीन स्नो लगाता हूँ, पाँडस पाऊडर ख़रीदा है। मैं, जिसकी आमदन थोड़ी है टिप टाप रहूँ और वह सेठ जिसके पास करोड़ों हैं, साढ़े तीन गज की फटी धोती पहने, सप्ताह में एक बार शेप

करे, एक दाल से जिसमें दाना डुबकी लगाए से न मिले, रोटी खाए, न जाने हमारी सोसाइटी ने यह क्या उलटे रूल बना दिए हैं। मैं कम खर्च करूँ तो कंजूस, वह कम खर्च करें तो सादे, शरीफ़! पर यह आर्डर तो लेना ही होगा आज।...

बाबू थोड़ी जगह दो, उस इरानन ने उसका ध्यान भंग किया। वह एक पतला कुर्ता और घाँघरा पहने थी। गले और बालों में, कोड़ियों, संख और अकीक के हार थे, चाँदी की बालियाँ थी कानों में, सिर पर लाल रंग का रुमाल था, उठती उभरती जवानी थी। लेखक के साथ सटकर वह बैठ गई।

क्यों न इसी इरानन पर एक कहानी लिख दूँ। ऐसी एक लड़की कानपुर स्टेशन पर एक बार मिली थी, बातों ही बातों में उसने हम से पाँच रुपये ऐंठ लिए थे, देहाती, उजड़- अश्लील नाच दिखाकर, आँखें मटका कर, दाँत दिखाकर...पर वह साली खूबसूरत बेहद थी।

...आजका यह आर्डर मिल गता तो बस सोना है ..

...कल जो वह लड़की, मिस बाँका, लेक्चर दे रही थी, वह भी देखने में ऐसी ही थी बिलकुल इस इरानन जैसी। कमाल का उत्साह है उस लड़की का। भरी मजलिस में कहने लगी आपके स्वालों का जवाब देने खड़ी हूँ और स्वाल भी सिलाई किरोशिप पर थी, एक दम खुदा और उसकी सृष्टि पर। जो भी कोई स्वाल करे, जवाब लेले। मैं भी अपना केस उसे बताऊँ? छोकरी मालूम अच्छी होती है। उसे पत्र लिखूँगा। शायद पत्र पढ़कर मुझे बात चीत करने को बुलाए। बातचीत मैं कर ही सकता हूँ, बस मित्रता हो जाएगी और

एक अच्छे मित्र की मुझे बेहद जरूरत है। यहाँ अकेला घूमा करता हूँ। थककर किसी की गोद में सिर रखता तो मुनासिब भी है। उसे पहले अपना केस लिखना होगा—मेरी एक दम दो हार्दिक इच्छाएँ हैं, दोनों एक ही कोटि की हैं, और दोनों एक दूसरे से भिन्न। एक जी है कि केवल लेखक ही बनूँ। पुस्तकें पढ़ूँ-लिखूँ, दुनियाँ की परवा न हो। रूखे सूखे में गुजारा कर लूँगा। दूसरी यह कि पिता जी रीटायर हो चुके हैं, घर में आमदनी का और कोई तरीका नहीं, मैं सब से बड़ा बेटा हूँ, मैं न करूँगा, कौन करेगा। बाँका कहती है अपनी काँशेंस के अनुसार चलना चाहिए। मेरी काँशेंस तो यह दोनों चीजें कहती है। ठीक निर्णय पर पहुंचने के लिए कि रीयल आवाज़ कौनसी है, साह को एनेलिसिज की जरूरत है पर यह लोग तो फ्रायड के साह को एनेलिसिज़ को मानते ही नहीं, विश्वास ही विश्वास पर चलते हैं। मैं फ्रायड में मानता हूँ। तो फिर कोई फायदा नहीं होगा। मैं उसके साथ सहमत न हुआ तो मित्रता नहीं होगी और सहमत होने का अभिनय मैं कर नहीं सकता। मैं उससे उलटा सोचता हूँ इसलिए हमारी मित्रता नहीं हो सकती। अजीब बात है या नहीं! मेरी काँशेंस ऐसा कहती है और वह लोग काँशेंस को मानते हैं फिर भी उदासीनता। असल में वह लोग सोचते हैं कि काँशेंस का कत्ल करके जब लोग उनके पल में आ जाते हैं तब काँशेंस बोलने लगती है। अजीब विडम्बना है!

ट्रेम के काँडक्टर ने अपनी रिकटयंत्र करने वाली चिमटी उसके कान में बजाई। लेखक ने जेब से एक इकन्नी निकाल-

कर उसकी ओर बढ़ा दी।

'कहाँ जाओगे ?'

'ओह मारकेट आगया। अब्दुल रहमान का टिक्ट दो।' वह अपना सामान सम्हालने लगा।

...यह आर्डर तो आज मिल ही जाएगा। सौ रुपये मिलेंगे। नया नोट—हरा हरा। हमारा खजाँची हमेशा नए नोट लाता है। बैंक के खज़ाँची से उसकी मित्रता दिखती है, हर बार नए नए नोट जो दे देता है। तनखाहदार पुराने नोट पसंद नहीं करते। नए नोट देख कर खुश हो जाते हैं जैसे नए नोटों के रुपये ज्यादा मिलते हों। एक बार कालिज में हमें 'नोट के इतिहास' पर एक प्रस्ताव लिखने को मिला था। नए नोट से पुराने नोट का इतिहास ज्यादा सरस होता है। कहाँ-कहाँ से, किस किस के हाथ से होकर आता है। किसी राजा के हाथ से, किसी साधु के हाथ से, किसी साहब के हाथ से, किसी काले के हाथ से, किसी खूबसूरत नाज़ुक छोकरी की उँगलियों से होकर, किसी रंडी के हाथ से, किसी कोढ़ी के हाथ से, कौन जानता है। जानने की परवा किसे है। कहीं से भी घूमकर आए, नोट सब को प्यारा है, ईमान नहीं। यह युग ही नोट का है। लोह युग, ताम्र युग, स्वर्ण-चाँदी युग के पीछे यह नोट युग आया है। पर नोट भी क्या बढ़िया रंगीले होते हैं एक ही नोट पर कितने रंग, धात तो एक ही रंग की होती है, पीली, काली, लाल, स्फेद, नोट में सब रंगों का ठीक मिश्रण रहता है। मैं तो नोट पसंद करता हूँ। जेब भारी नहीं होता, झंकार नहीं होती। और झंकार सुननी हो तो; किसी की चूड़ियों की,

किसी की पायजेबों की, रुपयों की झंकार भी क्या झंकार हुई !...

उसने देखा, साथ वाली इरानन के गले में झूल रहे अकीक आपस में रगड़ खाकर किट किट कर रहे थे और उसके पैरों में की पायजेबें, उसके थोड़ी थोड़ी देर पीछे पैर हिलाने पर बज उठतीं।

'अब्दुल रहमान अब्दुल रहमान स्ट्रीट' काँडक्टर ने दो बार कहा फिर दो घंटी बजा कर तीसरी बार कहा 'अब्दुल-रहमान स्ट्रीट।

लेखक चौंककर चलती ट्रेम में से अपना बोरिया बिस्तर सम्हाल कर उतरा। पीछे से एक गोरे की कार पूरी स्पीट पर आ रही थी, कचकच कर के रुकी और उस टाँमी ने मुँह फाड़ते हुए अंग्रेजी में कुछ कहा। लेखक का मुँह पीला पड़ गया, फिर भी उसने मुस्कराकर 'साँरी' कहने की कोशिश की। वह जानता था, दोष उसी का है, ट्रेम में साफ़ लिखा है, 'चलती गाड़ी से मत उतरिए।'

लिफ्ट में लगे हुए आइने में उसने मुँह देखा, पसीना पोंछा, बालों पर हाथ फेरा।

...सब ठीक है। सेठ देख कर खुश हो जाएगा। तीस हज़ार के आर्डर हो गए, बीस हज़ार अभी बाकी है। सात दिन बाकी हैं, कोई मोटी अक्लमंद सामी मिल जाए तो एक ही बीस हज़ार का आर्डर देदे। मालूम नहीं यह लोग अक्ल-मंद क्यों नहीं होते। लाख मीन मेख निकालते हैं, भाई नहीं बैठा, सोचकर बताएँगे, फिर आना...जैसे इनके बाप के नौकर हैं। चौथा चक्कर लगा रहा हूँ, अगर आर्डर देदें तो

पच्चीस रुपये चक्कर कम तो नहीं।...

सेठ साहब मसनद लगाए बैठे थे। एक हाथ तोंद पर था और दूसरा बातें करते समय हवा में हिलता था जैसे किसी दुश्मन पर प्रहार कर रहे हों। लेखक को देखकर बोले 'अरे-भई माल तो लेलिया। अभी नहीं चाहिए। कभी कभी आया करो, पूछ जाया करो, फिर जरूरत निकलने पर—।

उस भले मानस को इतना विचार नहीं कि किसी की आशाओं पर पहाड़ गेरने लगा है, उसे कह तो दे, सम्हल जाओ। बैठने को नहीं कहा, यह नहीं कहा, दूसरी बार तुम्हें जरूर देंगे—आया करो कभी कभी !

उसने लिफ्ट की घंटी बजाई। लिफ्ट ऊपर आ ही रही थी। दो आदमी उसमें से निकले। वह अन्दर घुसने लगा, लिफ्टमैन बोला, लिफ्ट नीचे जाने को नहीं हैं और खाली लिफ्ट लेकर नीचे चला गया।

वह चौथी मंजिल से नीचे उतरने लगा, धीरे धीरे, थका हुआ, झुका हुआ, निराश, हताश।

...कुछ समझ नहीं आता क्या करूँ, कहाँ जाऊँ। यह नौकरी छोड़ दूँ—मैं कहाँ से खाऊँगा, माँ बाप कहाँ से खाएँगे, बाँका से पूछूँ, वह क्या जाने। अमीर बाप की बेटी है—क्या समझेगी रोटी कमाना किसे कहते हैं।—

नौकरी छोड़दूँ ? !!!

हाँ...हाँ...नहीं...नहीं...

मई १९४४.